हत जवाहर लाल नेहरू शताब्दी वर्ष

लाली लाल जवाहर की

10535
25|12|59

ब्रजभूषण

शुभकामना

दिल्ली-३२

10535
25/12/89

दो शब्द

पण्डित जवाहर लाल नेहरू की शताब्दी पर उस महान-आत्मा, महामानव और राष्ट्र-चेता का पुण्य-स्मरण कर अपने अमर दिवंगत नेता और राष्ट्रीय पुरुष को श्रद्धा-सुमन भेंट करना प्रत्येक भारतवासी का राष्ट्रीय एवं नैतिक कर्तव्य है। प्रकाशक के नाते, इस राष्ट्रीय और नैतिक उत्तरदायित्व का गुरु-भार और अधिक घना हो जाता है। मित्र व लेखक डा० ब्रज भूषण ने तो पण्डितजी के देहावसान के पश्चात उन पर विस्तृत और श्रम साध्य शोध-कार्य किया है। नई पीढ़ी और किशोर-वर्ग को पण्डितजी की मधुर स्मृतियों, उनकी बाल-सुलभ चपलता एवं मानवपरक गतिविधियों से परिचित कराने के लिए मैंने जब मित्र ब्रज भूषण से अनुरोध किया तो वे सहर्ष इस शुभ कार्य के लिये अपना सहयोग देने के लिये तत्पर हो गये। प्रस्तुत रचना "लाली लाल जवाहर की" वास्तव में पण्डितजी की अमिट स्मृतियों में सजोई गई, उषाकाल की ऐसी ही लाली है जो मानस के अन्धकार को चीर कर भीतर अन्तरतल तक पहुंच कर सारे मन-प्रदेश को आलोकित कर देती है। इन अछूते, अनूठे व मर्मस्पर्शी संस्मरणों से नई पीढ़ी ही क्या, समूचा प्रबुद्ध-वर्ग भी अभिभूत हो उठता है। विश्वास है, पाठक इस श्रद्धा-सुमन की सुगन्ध से प्रफुल्लित होंगे।

प्रकाशक

बच्चों के प्यारे चाचा

'चाचा नेहरू' कहलाना मुझे बहुत भला लगता है। जब मैं नन्हे-नन्हे बच्चों के बीच होता हूं, तो भूल जाता हूं कि मैं राजनीतिज्ञ हूं या प्रधान मन्त्री हूं, मेरे सामने भारत की अमूल्य निधि, ये बच्चे होते हैं, जिन्हें देश के कर्णधार बनाना है और जिन्हें देश का भविष्य बनाना है, और इनके दरमियान मैं भी बच्चा बन जाता हूं...

—जवाहर लाल नेहरू

किसी गली, मोहल्ले या कालोनी में यदि किसी एक व्यक्ति को आस-पास के कुछ लोग चाचा, मामा, ताऊ या मौसा कहने लगें तो उसके विषय में आम चर्चा हो जाती है कि वह तो जगत चाचा

मामा, ताऊ या मौसा है। प्रायः किसी मोहल्ले में जब किसी बुजुर्ग महिला को कोई या पांच दस व्यक्ति बुआ कहकर पुकारने लगते हैं तो उनसे अवश्य डाह करने वाले या प्रेम करने वाले कहने लगते हैं कि—'लो यह तो जगत बुआ हो गई।' इसी विश्व के धरातल पर एक विश्व प्रसिद्ध नाम आता है—चाचा नेहरू।

चाचा नेहरू से पहले एक और नाम था जिसने विश्व सीमा को अपने प्रेमजन्य व्यवहार में बांध लिया था और वह नाम था—बापू। लेकिन, यह बापू नाम उन बुद्धिजीवियों, प्रौढ़ों और राजनेताओं से सम्बद्ध था जो महात्मा गांधी के आस-पास थे। बापू सम्बोधन में श्रद्धा है, आदर है, सम्मान है, लेकिन चाचा में केवल प्रेम है और भावना है। बापू भारत की सीमा में बाहर बहुत कम जा सका जबकि चाचा भारत की सीमाओं को लांघकर अमेरिका, रूस, चीन, जापान और लंका तक जा पहुँचा। यूँ तो बापू को भी बच्चों से बहुत प्यार था लेकिन चाचा नेहरू के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि बच्चों को भी उनसे बहुत प्यार था। पण्डित जवाहर लाल नेहरू के जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जब उन्होंने लोगों की भीड़ से ज्यादा बच्चों की किलकारियों को अहमियत दी। उन्हें अपनी जय-जयकार से ज्यादा बच्चों के मुँह से चाचा नेहरू सुनना ज्यादा पसन्द था। अपने भव्य और गौरवमय व्यक्तित्व को सम्पूर्णतया एक ओर धकेल कर बच्चों के साथ मिलकर वे अपने बचपन से जा मिलते थे। बच्चों को कभी उन्होंने यह अहसास नहीं होने दिया कि वे देश के प्रधान मन्त्री अथवा किसी महान राजनेता के समक्ष है। बच्चों के साथ तो मुस्कराहटों और खिलखिलाहट का एक सागर ही उमड़ पड़ता था। यदि कोई बच्चा उनके पास आकर बचपना करना भूल जाता तो वे स्वयं बचपने पर उतारू हो जाते थे। एक ... समारोह में एक बालक अपनी ऑटोग्राफ बुक लेकर

उनके पास आया और बोला—'चाचा' इस पर साइन कर दीजिये। पण्डितजी ने छेड़-छाड़ वाली मुस्कान से बालक को देखा और उसपर साइन कर दिये। और ओटोग्राफ बुक लौटा दी। चाचा के ओटोग्राफ पा लेने के उल्लास में बालक अपनी ओटोग्राफ बुक लेकर साथियों की ओर बढ़ा लेकिन एकाएक ही रुक गया और पलटा। ओटोग्राफ बुक फिर से चाचा की ओर बढाकर वह बोला—'चाचा, आपने तारीख तो डाली ही नहीं। मजा लेने की भावभंगिमा से पण्डितजी मुस्कराये और ओटोग्राफ बुक पर तारीख भी डाल दी। लेकिन बालक ने जब देखा तो चौंक पड़ा और बोला—'अरे, तारीख तो आपने उर्दू में डाली और साइन अंग्रेजी में किये। ऐसा कैसा ?'

पण्डितजी ने बालक को गुदगुदाते हुए कहा—'देखो भई गलती मेरी नहीं, तुम्हारी है। तुमने अंग्रेजी में कहा 'साइन' करो तो मैंने अंग्रेजी में साइन कर दिये। फिर तुमने उर्दू में कहा कि तारीख डालो तो मैं उर्दू में तारीख डाल दी। तुमने मुझे जैसा हुक्म दिया वैसा मैंने कर दिया।' बालक चाचा नेहरु की बाल सुलभता को कुछ समझा, कुछ नहीं समझा लेकिन आस-पास खड़े दूसरे लोग और बच्चे पण्डितजी की बाल सुलभता और विनोद-प्रियता पर आनन्द विभोर हो उठे।

विश्व प्रसिद्ध सत्य है कि पण्डित जी को गुलाब के फूलों से बहुत प्यार था। इसलिए जब कभी कहीं भी कोई समारोह होता तो आयोजक गुलाब की माला ही मंगवाया करते। एक बार एक बाल समारोह में आयोजकों ने ढेर सारी गुलाब की मालाओं की व्यवस्था की। ढेर सारी मालाओं में ढेर सारे गुलाब। इतने सारे फूलों की खुशबू अकेले पण्डितजी कैसे और कब तक लेते। अतः यह सोचते हुए कि फूल की खुशबू की तरह देश के बालक भी अपने सत्कर्मों की खुशबू सारे देश में फैलाने में समर्थ हों, वे सारी

मालाएं और फूल बालकों को बांट दिया करते थे। उस दिन भी उन्होंने ऐसा ही किया। हर बालक को वे एक-एक माला बाटते जा रहे थे, लेकिन उन्होंने देखा कि मालाए खत्म होने पर आ गई है और अभी तो बहुत बालक हैं। कुछ बच्चों को शायद माला नही मिलेगी यह सोचकर उनके चेहरे पर उदासी की रेखाएं उभर आई और वे बोले—'लगता है दीवाला निकल जायेगा।' पास खड़े आयोजकों ने उनकी बात सुनकर उनके भीतर की बात को ताड़ लिया। तुरन्त आदमी को दौड़ाया गया। और मालाए मंगवायी गई। और मालाए देखकर पण्डितजी के चेहरे पर रौनक दौड गई। बच्चो को मालाए प्राप्त करने का उतना चाव नही था जितना चाव पण्डितजी को हर बालक के हाथ तक माला पहुचाने का था। गाल थपथपाते, कमर बजाते और प्यार करते हुए वे बच्चो को मालाए बांटते जा रहे थे। लेकिन यह क्या ? मालाए खत्म और बालक फिर भी बच गये। जिन बच्चों को माला नही मिली उन्हे बाहो मे भरते हुए बोले—'आखिर दिवाला निकल ही गया। कोई बात नही फिर मिलेंगे—तुम लोगो की माला उधार।'

अनेक बार बच्चे अजीबोगरीब प्रश्न कर डालते। पत्रकारों के प्रश्न से भी अधिक जटिल प्रश्न होते थे कभी-कभी। उत्तर भी सही हो और बालक भी सन्तुष्ट हो सके ऐसा कमाल पण्डितजी को हासिल था। एक बार बाल दिवस पर एक बच्चे ने पण्डितजी से पूछा—'चाचा, आप विदेशो मे कभी शेर, कभी हाथी और कभी भालू भिजवाते हैं। आप हमे विदेश क्यो नही भेजते ?'

पण्डितजी मुस्कराये और बोले—'अरे, मुझे क्या मालूम था कि तुम भी जानवर हो।' उनकी बात सुनते ही आस-पास खड़े सभी बालक खूब जोर से हँस पड़े। बालकों की हँसी ने पण्डितजी की हँसी।

इसी प्रकार एक अन्य बाल समारोह के अवसर पर एक बालिका ने पण्डितजी से पूछा—'चाचा जी, क्या आपका कभी वजन भी लिया गया है?'

पण्डितजी अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट से बोले—'हां-हां, कई बार।'

बालिका ने फिर दूसरा प्रश्न कर दिया—'तो जीवन में आपका सबसे कम और सबसे ज्यादा वजन कब और कितना था?'

पण्डितजी पहले तो सोचने लगे फिर बोले—'हां, याद आया। जब मैं अहमदनगर जेल मे था तो मेरा सबसे ज्यादा वजन 162 पौंड था।'

इतना कहकर वे चुप हो गये। लेकिन बालिका ने पीछा नही छोड़ा और बोली—'और सबसे कम वजन कब और कितना था?'

उन्होंने प्यार से उस बालिका के सिर पर हल्की सी चपत लगाते हुए कहा—'सबसे कम वजन तब था जब मैं पैदा हुआ था, साढ़े सात पौंड था मेरा वजन तब।'

दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनकर आस-पास का वातावरण हँसी और खिलखिलाहटों से सराबोर हो गया। छोटों के साथ बड़े भी ऐसे मौकों पर चुटकियों का आनन्द ले लेते थे। ऐसा भी समझा जाता है कि पण्डितजी को रात-दिन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर राजनेताओं के साथ राजनीति पर शुष्क बातें करने के बाद सरसता की इच्छा रहती थी जो उन्हें बालकों और बच्चों के सामीप्य से ही प्राप्त होती थी। एक आराम, एक अवर्णनीय आनन्द उन्हें बच्चों के बीच में प्राप्त होता था।

उस दिन 'शकर्स वीकली' पत्रिका द्वारा एक बाल सभा का आयोजन था। बाल-समारोह दिल्ली में हो और पण्डितजी वहां

न हो तो आश्चर्य की बात हो जाती थी। अतः वहाँ उस दिन पण्डितजी भी थे। बच्चों को मालाएं बांट रहे थे। तभी एक छोटा-सा प्यारा-सा बच्चा उनके पास आया। उन्होंने उसे गोदी में भर लिया और पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?'

बच्चा शरमा गया और कुछ बोल नहीं सका। बच्चे के पास ही खड़े थे उसके माता-पिता। उनके चेहरे देखने जैसे हो गये। कुछ सहमे-सहमे कुछ डरे-डरे। पण्डितजी ने बालक से फिर पूछा—'अरे भई, नाम बताओ अपना। तुम्हें हम एक माला और देंगे।'

बच्चा फिर चुप। उसने पास खड़े अपने माता-पिता की ओर देखा। इशारे में कुछ बात कही गई। पण्डितजी ने तीसरी बार पूछा—'अच्छा, अगर तुम अपना नाम बता दोगे तो हम तुम्हें मिठाई देंगे। अब बताओ अपना नाम।'

बच्चा झिझकते हुए धीरे से बोला—'मोती लाल।'

पण्डितजी खिलखिला पड़े और बोले—'बाप रे।'

और सभी लोग हँस पड़े। बच्चे के माता-पिता ने भी जैसे राहत की सांस ली। हँसना चाहते हुए भी बेचारे हँस नहीं सके हँसे भी तो आस-पास खड़े और हँसते हुए लोगों का साथ दे भर के लिए हँस सके।

केवल दिल्ली में ही नहीं, पण्डितजी जब कभी दिल्ली से बा किसी भी गांव अथवा शहर में जाते तो उनकी आंखें बच्चों को तलाश करती थी। बच्चों को देखकर, उनकी किलकारियां सुनकर जैसे उन्हें एक उत्साह, एक शक्ति सी प्राप्त होती र थी। एक बार वे दिल्ली-अहमदाबादट्रेन से यात्रा कर रहे थे सुबह पांच बजे जयपुर ठहरने वाली थी। जयपुर के नेताओं कार्यकर्ताओं ने स्टेशन पर भव्य आयोजन कर डाला था। ज को मालूम हुआ तो सुबह तीन बजे से ही स्टेशन भीड़ में ख

रह गया। ट्रेन जब स्टेशन पर रुकी तो पूरे प्लेटफार्म पर जन समूह। नारों और जय-जयकारों से समूचा स्टेशन हिल गया। नेतागण और कार्यकर्ता पुष्प मालाएं लेकर गले में डालने लगे। पण्डितजी दरवाजे पर खड़े-खड़े, इधर-उधर देखने लगे। गले में पड़ने वाली मालाओं और कानों में पड़ने वाली जय-जयकारों से बेमुध होकर उनकी निगाहें सारे स्टेशन पर कुछ खोजने में लगी हुई थीं। किसी की समझ नहीं आ रहा था कि उन्हें किस चीज की खोज है। आखिर एक कार्यकर्ता ने पूछ ही लिया—'क्या चाहिए पण्डितजी ?'

पण्डितजी ने कार्यकर्ता की ओर देखा, फिर भीड़ पर दृष्टि घुमाकर बोले—'बच्चे नहीं आये ? बच्चे कहां हैं ?' सब गुमसुम। कौन बोले और क्या कहे। फिर वे खुद ही बुदबुदाये—'इतनी सुबह तो सभी सो रहे होंगे।'

बच्चों का चेहरा दिखाई नहीं दिया तो अनमने और उदास से होकर वापस अन्दर चले गये। सारे नेता, कार्यकर्ता और आयोजक हैरान-परेशान। उस दिन स्टेशन पर उपस्थित लोगों ने इस सत्य को स्वीकार किया कि पण्डितजी के सामने बिना बच्चों के आना बेमायने है। इसी प्रकार की एक और घटना इसी सत्य को उजागर करती है कि बच्चे पण्डितजी के जीवन का एक अमिट अंग बन चुके थे। अलवर में मडल कांग्रेस कमेटी का सम्मेलन था। पण्डितजी वहां पहुंचे। वहां के नेता, कार्यकर्ता सभी एक दूसरे को ठेलकर पण्डितजी के पास पहुंचने को बेचैन और व्यग्र थे। नारे लगाये गए। मालाएं पहिनाई गईं। मगर पण्डितजी एकदम चुप और खामोश। कार में बैठकर पूरा कारवां सम्मेलन के पांडाल की ओर बढ़ा। जोरदार स्वागत की तैयारियां थीं। सारे रास्ते जय-जयकार के नारे। रंग-गुलाल, हार-मालाएं सभी कुछ जुटाया गया मगर पण्डितजी मात्र दस्तूरी ढंग से मुस्कराते

और वह नाम था—नेहरू सान (श्री नेहरू)। मिचि-को ने श्री नेहरू को एक पत्र लिखा—नेहरू सान, जापान के बच्चो को एक इन्दो जी (हाथी) की जरूरत है। कृपया एक हाथी भेज दीजिये पत्र नेहरू जी को मिला। जापान के बच्चो की माग थी। विदेश के बच्चो ने पहली वार नेहरू से कुछ मागा था। उन्होने तुरन्त पन्द्रह वर्षीय हथिनी 'इन्दिरा' जापान के बच्चो के लिए भेज दी। बच्चे 'इन्दिरा' को पाकर बहुत ही खुश हुए और उन्होने नेहरू सान को एक धन्यवाद पत्र भी भेजा।

मिचि-को आज 53 वर्ष से अधिक की हो गई है। पण्डितजी के देहावसान का समाचार सुनकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी थी। उस समय उसकी आयु 30 वर्ष के लगभग थी। और उसी दिन उएनो के चिड़ियाघर मे जहा इन्दिरा को रखा गया था। नेहरू जी के चित्र को काली पट्टी से घेर कर इन्दिरा के गले में लटका दिया गया था। जापान मे ही नही अन्य अनेक देशो मे बच्चे नेहरू जी का नाम ही पहचानते हैं।

बच्चे देश के हो अथवा विदेश के पण्डितजी के लिए सब ही थे। देश का वर्तमान निर्माता जब देश के भावी निर्माता मिलता था तो अवश्य ही कोई सन्देश देता होगा। जिन्दादिल जीने का सन्देश, काटो में भी मुस्कराते रहने का सन्देश जीयो और जीने दो का सन्देश। पण्डितजी ने जिन बच्चे सन्देश दिये, जिन्हें गोदी में उठाकर चूमा, जिन्हें प्यार से बाटी आज वे जवान हो गये होंगे। आज वे देश के निर्माता की स्थिति में होंगे। ईश्वर करे बच्चो के प्यारे चाचा का और भाई-चारा इन बच्चो के माध्यम से आगे से आ चमकता रहे।

बाल सुलभ भोलापन

फूल चुनते समय कांटे अक्सर चुभ जाते हैं।

—जवाहर लाल नेहरू

बच्चे जिसे प्यारे हों उसे बचपना क्यों न प्यारा लगेगा। बच्चों के बचपन में रमते-रमते पण्डितजी ने बाल सुलभता को अपने में समो लिया था। और इतना अधिक समो लिया था कि कभी-कभी वे खुद भी बच्चों की तरह मचल उठते थे। यह मचलना उनके मन का भोलापन और निष्कलंकता ही कही जायेगी। समय, स्थान और स्थिति [illegible] जान केवल अपने मन के मुख्य भाव को स्पष्ट

ह नाम था—नेहरू सान (श्री नेहरू)। मिचि-को ने भी
को एक पत्र लिखा—नेहरू सान, जापान के बच्चों को एक
की (हाथी) की जरूरत है। कृपया एक हाथी भेज दीजिये।
नेहरू जी को मिला। जापान के बच्चों की माग थी। जिसे
बच्चों ने पहली बार नेहरू से कुछ मांगा था। उन्होंने तुरन्त
वर्षीय हथिनी 'इन्दिरा' जापान के बच्चों के लिए भेज दी।
ने 'इन्दिरा' को पाकर बहुत ही खुश हुए और उन्होंने नेहरू
न को एक धन्यवाद पत्र भी भेजा।

मिचि-को आज ४३ वर्ष से अधिक की हो गई है। पण्डितजी
के देहावसान का समाचार सुनकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी थी।
उस समय उसकी आयु ३० वर्ष के लगभग थी। और उसी दिन
उएनो के चिड़ियाघर में जहा इन्दिरा को रखा गया था। नेहरू
जी के चित्र को काली पट्टी से घेर कर इन्दिरा के गले में लटक
दिया गया था। जापान में ही नहीं अन्य अनेक देशों में बच्चे भ
नेहरू जी का नाम ही पहचानते हैं।

बच्चे देश के हो अथवा विदेश के पण्डितजी के लिए सा
ही थे। देश का वर्तमान निर्माता जब देश के भावी निर्माता
मिलता था तो अवश्य ही कोई सन्देश देता होगा। जिन्दादि
जीने का सन्देश, कांटों में भी मुस्कराते रहने का सन्देश स
जीओ और जीने दो का सन्देश। पण्डितजी ने जिन बच्चे
सन्देश दिये, जिन्हे गोदी में उठाकर चूमा, जिन्हें प्यार से माताए
बाटी आज वे जवान हो गये होगे। आज वे देश के निर्माता बनें
की स्थिति में होगे। ईश्वर करे बच्चो के प्यारे चाचा का प्या
और भाई-चारा इन बच्चों के माध्यम से आगे से आगे ग
पकड़ता रहे।

बाल सुलभ भोलापन

फूल चुनते समय काँटे जरूर चुभ जाते हैं।

—जवाहर लाल नेहरू

बच्चे जिसे प्यारे हों उसे बचपना क्यों न प्यारा लगेगा। बच्चों के बचपन में रमते-रमते पण्डितजी ने बाल सुलभता को अपने में समो लिया था। और इतना अधिक समो लिया था कि कभी-कभी वे खुद भी बच्चों की तरह मचल उठते थे। यह मचलना उनके मन का भोलापन और निष्कलंकता ही कही जायेगी। समय, स्थान और स्थिति से अनजान केवल अपने मन के मुख्य भाव को स्पष्ट

रूप से कह देने वाला तो बालक ही हो सकता है। यदि 60-70 वर्ष का व्यक्ति भी ऐसा ही करे तो उसे मस्त-मना ही कहेंगे। अभी देश आजाद नहीं हुआ था और पण्डितजी जेल से छूटे ही थे। बाहर आते ही उन्हें मालूम हुआ कि बलिया जिले में विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। वे तुरन्त ही बलिया की ओर चल पड़े। बलिया के पास ही एक और स्थान था बैरिया। वहां पर भी उनका कार्यक्रम आयोजित था। लेकिन वहां जाने के लिए उन्हें मोटर नहीं मिली। वे सुरेमनपुर स्टेशन से बैरिया तक चार मील लंबे पर ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर कष्ट उठाते हुए पहुंचे। आयोजक बहुत ही लज्जित हुए। शाम को भोजन के समय भी उनके कष्ट की ही बात होती रही। भोजन के समय उनके सामने पूरी-भाजी और तरह-तरह के पदार्थ रखे गये। लेकिन ऐसा लगा कि उन्हें उस भोजन में कुछ रुचि नहीं है। उन्होंने पूछ ही लिया—"सत नहीं है क्या?"

सभी जानते हैं और पण्डितजी भी जानते थे कि सत्तू बलिया का प्रचलित और प्रिय भोजन है। साधारण लोगों का साधारण-सा लेकिन स्वाद से पूर्ण भोजन। वहां उपस्थित लोग पण्डितजी की सादगी और भोलापन देखकर दंग रह गये।

इसी प्रकार दक्षिण भारत के एक महोत्सव में उन्हें ढेरों मालाएं पहनाई गईं। जब उन्होंने मालाएं उतारकर मेज पर रखीं तो अपनी अचकन में लगे गुलाब के फूल को गायब पाया। वे बच्चों जैसी बेचैनी से बोले—"अरे, मेरा गुलाब कहां है?"

इधर-उधर देखा फिर अचानक ही उनकी दृष्टि कुछ दूर जा पड़ी जहां उनका गुलाब पड़ा हुआ था। वे मंच से कूद पड़े और छलांग मारकर वहीं जा पहुंचे और अपना गुलाब अचकन में लगाते हुए बोले—"यह रहा मेरा गुलाब।"

देखने वालों ने देखा और सुनने वालों ने सुना। जैसे एक

भोला-भाला बालक अपनी किसी प्रिय वस्तु के लिए मचल उठा हो। निष्पाप मन और शुद्ध विचार के बिना ऐसी बाल सुलभता कहां दिखाई देती है। वैसे भी पण्डितजी स्वभाव से ही मिलनसार, खुशमिजाज और हँस-मुख तबियत के व्यक्ति थे। पार्टियों में शामिल होने का भी उन्हें शौक था। शौक इसलिए कि यहीं कुछ समय के लिए हँसी-ठट्ठों के बीच राहत मिलती थी। अलग किस्म के लोग मिलते थे। ऐसी ही एक नये साल की पार्टी में पण्डितजी एक बार जा पहुंचे। ढेरों मेहमान आये हुए थे। इन मेहमानों में एक गर्ल्स कॉलिज की प्रिंसिपल भी आई हुई थीं। उन्होंने अपने जूड़े में तरह तरह के खुशबूदार फूल लगा रखे थे। पण्डितजी लगातार उस देवी के फूलों की ओर देखते हुए मुस्करा रहे थे। भोजन के बाद सभी लोग लाईब्रेरी में पहुंचे और वहां 'मर्डर' खेल आरम्भ हुआ। इस खेल में हत्यारे का चुनाव लॉटरी से होता है और हत्यारा कौन है इस बात का किसी को पता नहीं चलता है। अंधेरा होने पर हत्यारा किसी की भी झूठ-मूठ हत्या करता है। रोशनी होने पर एक जासूस उससे तथा और लोगों से सवाल-जवाब करता है। खेल के नियमों के अनुसार हत्यारा चाहे जितना बड़ा झूठ बोल सकता है।

खेल आरम्भ हुआ और बत्तियां बुझ गईं। कुछ ही क्षणों बाद सभी ने एक जनानी चीख सुनी। पता चला कि हत्यारे ने हत्या कर दी है। अब प्रकाश किया गया। सभी ने देखा कि जिसके जूड़े में फूल लगे थे वह प्रिंसिपल महोदया 'मृत' पड़ी हैं और उनके जूड़े के सारे फूल इधर उधर बिखरे हुए पड़े हैं। यह सब चल रहा था और पण्डितजी हाथ में फूल लिये हुए सूंघ रहे थे और खुश हो रहे थे। जासूस ने उनसे जिरह करते हुए पूछा—"क्यों महाशय, यह खून आपने किया है? ये फूल आपने उड़ाये हैं?"

[illegible]

[illegible]

[illegible] देश के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] को [illegible] भी कर सकता है, [illegible] [illegible] लिए भी जाना है। इसी प्रकार [illegible] और [illegible] चीनी आक्रमण के समय [illegible]। [illegible] पर हमला हुआ तो देश की भी बहनों ने अपने ज़ेवर और सोना-चांदी उतारकर सरकार के हवाले कर दिये। नेहरू जी के एक आवाहन पर देश की जनता अपना सब कुछ देने को तैयार हो गई थी। उसी वर्ष नेहरू जी का 73वां जन्म-दिन भी था। पंजाब सरकार ने उस वर्ष तय किया कि वह नेहरू जी को सोने से तोलेगी और उनका दुगुना सोना रक्षा कोष में देगी।

14 नवम्बर, 1962 को पंजाब के मुख्य मन्त्री सरदार प्रताप सिंह कैरों चार सन्दूकों में सोना भरकर दिल्ली लाये। प्रधान मन्त्री भवन के एक लॉन में नेहरू जी को तोला गया तो उनका वज़न केवल 121 पौण्ड ही निकला। पंजाब की जनता की प्रतिज्ञा के अनुसार मुख्य मन्त्री ने उससे दुगुना सोना तोल दिया फिर भी सोना बच गया। नेहरू जी ने एक बार अपने को देखा फिर उस बचे हुए सोने की तरफ देखकर बहुत ही मासूमियत से बोले—"क्या इस बचे हुए सोने को वापस ले जायेंगे ?"

उनकी बात सुनकर वहां खड़ी भीड़ ठहाका मारकर हँस पड़ी। कुछ क्षण तो पण्डितजी भी हँसने का कारण नहीं समझे लेकिन जब अपनी मासूमियत का ख्याल आया तो खुद भी जोर से हँस पड़े और फिर उनकी हँसी का साथ दिया वहां उपस्थित गों ने।

कहीं मान-सम्मान तो कहीं प्यार और कहीं वात्सल्य को ता-लुटाता यह बूढ़ा बालक जहां से भी निकल जाता, लगता ार का मौसम आ गया है। तन पर बुढ़ापा होते हुए भी इस क्ति के मन को बुढ़ापे ने कभी नहीं छुआ। मन पर कभी किसी म्म का बोझ आने ही नहीं दिया। हर रंग में रम जाने की ला में माहिर पण्डितजी को एक बार ऐसा ही प्रसंग पेश हुआ व उनके सम्मुख उनसे भी बड़ी उम्र की महिला आ खड़ी ई। पंजाब से लाये गये सोने से उन्हें तोला जा चुका था। थ मन्त्री के साथ ही एक अस्सी वर्षीय महिला भी आई थी। लादान के बाद इस महिला ने पण्डितजी को तिलक लगाया ौर आशीर्वाद देते हुए कहा—"पुत्तर नेहरू, जुग-जुग जीओ।

पण्डितजी भी बच्चे की तरह मचलकर बोले—"आशीर्वाद ो दे दिया, अब मिठाई खाने को भी तो दो अपने पुत्तर को।"

लोगों ने बड़े कम अवसर ऐसे देखे थे जब नेहरू जी के ऊपर ोई अपना बड़प्पन जता रहा हो। यह स्थिति तो प्रत्यक्ष ही ी। महिला ने तुरन्त ही अपने हाथ की अगूठी निकाली और ेहरू जी की हथेली पर रख दी। लोगों में हँसी, खुशी, भावुकता और वात्सल्य की एक लहर-सी दौड़ गई। भला इस जन-नायक के भोले भाव और बाल सुलभ चंचलता के दर्शन इतनी सरलता से किसे हो सकते थे। लेकिन जिन्होंने देखा, सुना और जाना उनके लिए तो वे क्षण मधुर स्मृति ही बनकर रह गये हैं।

विनोदप्रिय

जिंदगी कागज का एक सादा पन्ना है। इस बात के लिए हम आज़ाद हैं कि हम इस पर जो चाहें लिखें।

—जवाहरलाल नेहरू

प्राय देखा गया है कि सरकारी दफ्तर अथवा पाठशाला के मुख्याध्यापक या फिर किसी विषय विशेष के प्रोफेसर अपने काम और पद की गरिमा को बनाये रखने के लिए ... ेर तो ... जाते हैं कि उनका हँसना ही जाता ...

हँसना ही भूल जाते हैं। झूठे अहंकार और मिथ्याचार की एक कृत्रिम-सी दीवार ऐसे लोगों के चारों ओर खड़ी रहती है। ये लोग समझते हैं कि जिम्मेदारी के काम और गम्भीर पेशे में गम्भीरता का होना अति आवश्यक है। भला भारत जैसे बड़े देश के प्रधान मन्त्री से बड़ा और कौन-सा जिम्मेदारी का काम हो सकता है, लेकिन वहां बैठकर भी पण्डितजी कभी हँसना नहीं भूले। हास्य और विनोद उनके जीवन के मुख्य अंग थे। जब कभी भी चुटकी लेने का मौका आया वे चूके नहीं। विनोद और हास्य के अवसर को उन्होंने कभी हाथ से जाने नहीं दिया।

वे एक बार मथुरा गये हुए थे। वह प्रान्तीय कांग्रेस अधिवेशन का कार्यक्रम था। मथुरा का खान-पान बहुत ही गरिष्ठ होता है। दूध, मलाई बरफी, घी वगैरा। तो वहां एक शाम जलपान की व्यवस्था थी। सभी को चाय दी जा रही थी पण्डितजी के पास भी चाय पहुंचायी गई। उन्होंने देखा कि चाय में पिस्ते बादाम, इलायची, केशर, दालचीनी, काली मिर्च वगैरा मिलाकर कई खुशबूदार मसाले पड़े हुए थे। निसन्देह चाय बहुत ही अच्छी बनी थी। उसमें माल पड़ा था। अच्छी क्योंकर न बनती। चाय की चुस्की लेते हुए पण्डितजी ने एक कार्यकर्ता को भेजकर चाय के प्रबन्धकर्ता को बुलवाया। वे महाशय आये और मन में गुदगुदी लेकर आये यह सोचते हुए कि मेरी बनी चाय पीकर पण्डित जवाहरलाल नेहरू बहुत ही खुश हुए हैं तभी मुझे बुलाया गया है। वे आये तो विनम्रतापूर्वक प्रणाम करके खड़े हो गये। पण्डितजी ने उन्हें देखा और पूछा—'लालाजी, यह चाय आपने ही बनाई है?'

लालाजी बोले—'जी हां, मैंने ही बनाई है। कहिये, कैसी लगी आपको?'

पण्डितजी ने चुस्की लेते हुए कहा—'बहुत ही बढ़िया चाय

स्थिति को देखते हुए पण्डितजी का कुछ भी खुलकर बता देना किसी भी विकट स्थिति को जन्म दे सकता था। अतः पत्रकार ने भूमिका बाँधते हुए आगे की बात जानने के लिए कहा—'क्या सरकार बनारस विश्वविद्यालय को कहीं और ले जायेगी ?'

वे पत्रकार की ओर देखकर बोले—जी, आप कहें तो बनारस को ही कहीं और ले जायें।'

यहाँ उपस्थित लोगों को जो हँसी आई तो देर तक नहीं रुकी और बेचारे पत्रकार महाशय जिस भेदभरी खबर को बटोरने आये थे, उससे सम्बन्धित कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके।

पूरे दिन उन्हें कई विषयों पर विचार करना और बोलना पड़ता था। कभी किसी राजदूत के साथ हैं तो कभी किसी संसद सदस्य के साथ। कभी कोई विदेशी मेहमान आया है तो कभी देशी कलाकार से मुखातिब हैं। आम लोगों में और राजनेताओं में वे अपने विनोद के लिए जितने प्रिय थे, कलाकारों में भी उनकी उतनी धाक थी। एक बार कवि दिनकर और शायर सागर साहब पोलैंड के एक कवि सम्मेलन से लौटे तो दिनकर जी वहाँ पर घटी एक घटना को सुनाते हुए पण्डितजी से बोले—'कवि सम्मेलन में जो धूम भारत की रही वह और किसी देश की नहीं। सागर साहब जब लयबद्ध होकर तरन्नुम में बोलते थे तो वाह-वाह ही उठती थी। उनकी यह वाह-वाह सुनकर फिनलैंड के एक ... सुनकर मुझसे कहा कि अगली बार मैं कवि सम्मेलन ... में अपनी वायलीन साथ लेकर आऊँगा। यह ... साहब तो भड़क ही उठे।'

... जी ने दिनकर जी की बात काटते हुए कहा—... गये। सागर को कहना था कि अगर तुम ... तो मैं अपना तबला लाऊँगा।' उनकी ... जी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

हँसना ही भूल गए थे सब विश्व के भाई-चारे, शान्ति और प्रेम क
सन्देश देने वाले पण्डित जवाहर लाल नेहरू हँसने-हँसाने क
कोई भी अवसर हाथ से खोए बिना अपनी विनोद-प्रियता के द्वा
पर सभी के मन पर बैठ कर निर्विघ्न राज्य करते रहे थे।

क्रोधी मगर सत्यार्थी

इकट्ठा होने से, कायदा होने पर, ताकत आती है। वैसे तो भूसा भी इकट्ठा होता है, पर कायदा न होने से हवा का एक छोटा-सा झोंका उसको बिखरा देता है।

—जवाहरलाल नेहरू

कहा जाता है कि चालाक और धूर्त व्यक्ति को क्रोध नहीं आता। वह अपने अपमान और भावों पर अंकुश इसलिए रख लेता है कि भविष्य में बदला लेने का इरादा वह मन-ही-मन पक्का कर सके। तात्पर्य यह हुआ कि कारण होते हुए भी शान्ति रखना कोई अच्छा लक्षण नहीं होता। इसके विपरीत यह भी कहा जाता है कि जो व्यक्ति ईमानदार और मेहनती होगा, सच्चा होगा,

ह क्रोधी भी अवश्य ही होगा। धर्म-ग्रन्थों और शास्त्रों में तो
ध को बुरा ही कहा गया है। लेकिन यह सत्य सन्तों पर
रितार्थ होता है। संसारी पर तो लागू हो ही नहीं सकता।
ण्डितजी के विषय में भी यह प्रसिद्ध था कि वे क्रोधी और तुनक-
मिजाज आदमी हैं। लेकिन, बहुत ही कम लोगों ने उनके क्रोध
और तुनकमिजाजी का विश्लेषण किया है। नीति, न्याय, सत्य का
रुद्ध अथवा किसी गरीब पर अत्याचार होते देखकर जिम्मेदार
व्यथित होने के नाते क्रोध आ जाना स्वाभाविक ही है। पण्डितजी
ो नियम और अनुशासन बहुत प्रिय थे। इसके विरुद्ध आचरण
रते देख उनके क्रोध का भड़कना स्थिति के अनुसार उचित ही
कहा जायेगा।

है।"

उल्लास और खुशी के उस वातावरण में जैसे एकाएक ही अवरोध आ गया। जिन्होंने देखा उन्होंने यह भी समझा कि यह व्यक्ति अपनी खारीफ अनीति को कलम और खून की स्याही से लिखवाना पसन्द नहीं करता। यही कारण के लिए क्रोध का आना आवश्यक भी है। यदि ऐसा न हो तो देश का नेता जनता के हितों-अहितों का ध्यान रखकर उनकी सुख-सुविधा की व्यवस्था कैसे कर सकेगा?

हँसते-हँसते क्रोध आ जाना और क्रोध की अवस्था में भी हँस पड़ना व्यक्ति के इस गुण को उजागर करते हैं कि वह किसी भाव विशेष को अपने सिर पर लादकर नहीं बैठा है बल्कि शीतल झरने की तरह बहता चला जा रहा है। पण्डितजी के साथ ऐसा अनेक बार हुआ है। एक बार वे भाखरा-नंगल बांध को देखने गये। उनके साथ वहां के इन्जीनियर भी थे। काम जोरों से चल रहा था। ढेरों मजदूर काम कर रहे थे। मजदूरों के साथ हँसते-बोलते हुए वे सारा काम देख रहे थे। एकाएक ही उन्होंने एक मजदूर से पूछ लिया—"तुम काम क्यों करते हो?" मजदूर का जवाब था—'पेट की खातिर।'

इतना सुनना था और पण्डितजी अपने पास खड़े इन्जीनियरों पर बिगड़ गये और बोले—"आप लोगों ने देश की इज्जत को धूल में मिला रखा है। इतने दिनों की आजादी के बाद भी ये मजदूर इस सच्चाई को समझ नहीं सके हैं कि यह काम देश के निर्माण के लिए होना है।"

पण्डितजी की बात को वहां उपस्थित सभी लोगों ने सुना। लेकिन पत्रकारों ने इस सत्य को समझा कि आजाद देश के अनपढ़ नागरिकों को एक प्रधान मन्त्री अकेला तो एक-एक के पास जाकर देश की स्थिति से परिचित नहीं करा सकता। यह

काम का उन जिम्मेदार लोगों का ही है जो यौम भी बड़ी दफ्तर काम कर रहे हैं। केवल वक्तव्यवादी बनकर अपनी कीर्ति उपार्जित करते रहना और हर छोटी-मोटी बात के लिए सरकार तथा मन्त्री को दोष देते रहना तो सही बात नहीं है। देश में राष्ट्रीय भावना और नागरिक भावना का अभाव इसी कारण है कि सम्बन्धित अधिकारी मात्र आज्ञा देने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझते हैं। नागरिक भावना और राष्ट्रीय भावना को आम आदमी तक पहुँचाने के लिए जैसे वे बिलकुल भी जिम्मेदार नहीं हैं। बस, इसी भाव और कारण ने पण्डितजी का मूड खराब कर दिया।

पन्द्रह अगस्त का दिन था। प्रतिवर्ष की तरह पण्डितजी लाल किले पर तिरंगा फहराने के लिए आये। समारोह की सारी व्यवस्था पूर्व नियोजित थी। पण्डितजी तो 1947 से ही लाल किले पर तिरंगा फहराते आ रहे थे। जिस बुर्ज पर झंडा फहराया जाता था, उस पर सदा एक सीढ़ी लगी होती थी। आज वहाँ पर वह सीढ़ी नहीं थी। पण्डितजी जब बुर्ज के नीचे पहुँचे और सीढ़ी नहीं दिखाई दी तो बिगड़ गये और बोले—"सीढ़ी कहाँ गई ?"

वहाँ की व्यवस्था करने वाले सैनिक कमांडर ने कहा—"जी, वह सीढ़ी तो दूसरी ओर रखी है।"

नई व्यवस्था से अपरिचित होने के कारण झंडा फहराने में परेशानी पेश आ रही थी। वे और अधिक बिगड़ गये और बोले—"यह भी कोई इन्तजाम है।"

वे गुस्से से लाल-पीले हो रहे थे। कारण था कि सामने लाखों आदमी खड़े इस घड़ी का इन्तजार कर रहे थे और एक राष्ट्रीय कार्य में बाधा-सी आ गई थी। नई व्यवस्था के विषय में उन्हें कुछ मालूम नहीं था और वे जान नहीं पा रहे थे कि अब

क्या करना है और कैसे करना है। उसी सोच में उनके मुह से निकल पड़ा—'डिसमिस'।

सैनिक कमांडर के तो हाथों के तोते ही उड गये। वह देखता ही रह गया। पण्डितजी दूसरी ओर से सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गये और उन्होंने झंडा फहराया। जब वे सीढ़ियों से उतर कर नीचे आये तो सैनिक कमांडर अपना त्याग-पत्र हाथ में लिये खड़ा था। उन्हें देखते ही उसने अपना त्याग-पत्र आगे बढ़ा दिया। पण्डितजी ने कागज हाथ में लेकर पूछा—"अब यह क्या है ?"

कमांडर ने कहा—"आपने डिसमिस तो कर ही दिया है। सोचता हूं अब त्याग-पत्र ही क्यों न दे दूं।"

नेहरू जी ने त्याग-पत्र बिना पढ़े ही उसे फाड़ते हुए कहा—"अब तुम और मेरा काम बढ़ाओगे। देश में लाखों नौजवान बेरोजगार हैं। उनके रोजगार की समस्या हल नहीं हुई है और आप जनाब इस्तीफा लिये खड़े हैं। जाओ, काम करो अपना।" कहकर वे आगे बढ़ गये। सैनिक कमांडर देखता ही रह गया। खुशी के मारे उसकी आखों में आसू छलछला आये। वह सोचने लगा, क्या हस्ती है यह। घड़ी में तोला घडी में माशा, मिजाज क्या है तमाशा।

घड़ी में तोला घड़ी में माशा वाले सत्य को चरितार्थ करने वाली एक और घटना पण्डितजी से जुडी हुई है। उस दिन पण्डितजी की वर्षगांठ थी और वे बहुत ही खुश नजर आ रहे थे। तभी श्री यशपाल जैन अपने साथियों के साथ उनसे मिलने आये और बोले—"पण्डितजी, अजमेर की हटुंडी महिला शिक्षा सदन के बारे में हम लोग एक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। आप उसके लिए दो शब्द लिख दीजिये।"

पण्डितजी बोले—"अच्छी बात है। ग्रन्थ छप जाये तो एक प्रति मेरे पास ले आना मैं लिख दूंगा।

कुछ दिन बाद ग्रन्थ छप गया तो हटुंडी के व्यवस्थापक श्री हरिभाऊ उपाध्याय, उनकी पुत्री श्रीमती शकुन्तला तथा दशरथ जैन उनके पास एक प्रति लेकर पहुँचे और ग्रन्थ के लिए कुछ लिखकर देने के लिए निवेदन किया। इस पर पण्डितजी बिगड़ कर बोले—"अरे, मेरे पास इतना वक्त कहाँ है। लोगों की इस आदत को मैं पसन्द नहीं करता। इसको पकड़, उसको पकड़। दो शब्द, प्रस्तावना, भूमिका। यह सब क्या तमाशा है, और यह बुरी बात है। इन सबमें फायदा क्या ? बगैर बात लोगों को परेशान करना है।"

सुनकर सब चुप, सब सुन्न। एक दूसरे की तरफ देखते सभी सहमे-सहमे बैठे रह गये। तभी ग्रन्थ को एक तरफ र हुए पण्डितजी ने शकुन्तला से पूछा—"तेरा क्या हाल है ?"

उसने मुंह लटकाते हुए कहा—"मेरा हाल बहुत खराब है"

पण्डितजी जैसे चिन्तित से होकर बोले—"क्यों-क्यों, ते हाल खराब क्यों है ?"

उसने कहा—"अगर हमें अपने बड़ों का आशीर्वाद न मि तो हमारा हाल अच्छा कैसे रह सकता है।"

संकेत समझकर पण्डितजी एकदम मुस्करा पड़े और बोले 'अरे, तू तो अब बड़ी हो गई है। बड़ों की-सी बातें करने लगी। भई कुछ बातें टालने के लिए कही जाती हैं। इसका मतलब थोड़ा ही है कि मैं कुछ लिखूंगा ही नहीं।"

और उसके बाद उन्होंने ग्रन्थ के लिए अपना मन्तव्य लि कर दिया। साधारण-सी स्थिति के लिए इतने उतार-चढ़ा सामने वाले व्यक्ति को सोचने क्या समय लगेगा कि यह व्यक्ति तो सनकी है। लेकिन विश्लेषण करने वाले तो विरले ही होते हैं

24 ... से बीस घंटे काम करना। सारे देश की समस्या ...

या करना है और कैसे करना है। इसी क्रोध में उनके मुह से नकल पड़ा—'डिसमिस'।

सैनिक कमांडर के तो हाथों के तोते ही उड़ गये। वह देखता ही रह गया। पण्डितजी दूसरी ओर से सीढ़िया चढ़कर ऊपर गये और उन्होंने झंडा फहराया। जब वे सीढ़ियों से उतर कर नीचे आये तो सैनिक कमांडर अपना त्याग-पत्र हाथ में लिये खड़ा था। उन्हें देखते ही उसने अपना त्याग-पत्र आगे बढ़ा दिया। पण्डितजी ने कागज हाथ में लेकर पूछा—"अब यह क्या है ?"

कमांडर ने कहा—"आपने डिसमिस तो कर ही दिया है। सोचता हू अब त्याग-पत्र ही क्यों न दे दूं।"

नेहरू जी ने त्याग-पत्र बिना पढ़े ही उसे फाड़ते हुए कहा—"अब तुम और मेरा काम बढ़ाओगे। देश में लाखों नौजवान बेरोजगार हैं। उनके रोजगार की समस्या हल नहीं हुई है और आप जनाब इस्तीफा लिये खड़े हैं। जाओ, काम करो अपना।" कहकर वे आगे बढ़ गये। सैनिक कमांडर देखता ही रह गया। खुशी के मारे उसकी आंखों में आंसू छलछला आये। वह सोचने लगा, क्या हस्ती है यह। घड़ी में तोला घड़ी में माशा, मिजाज क्या है तमाशा।

[illegible]

[illegible]
[illegible] करता है।

[illegible] दूसरे की तरह देखो [illegible] हुए पण्डितजी ने मुस्कराते हुए पूछा—'तेरा क्या हाल है?'

उसने मुँह लटकाते हुए कहा— मेरा हाल बहुत खराब।

पण्डितजी जैसे विस्मित से होकर बोले—'क्यों री, हाल खराब क्यों है?'

उसने कहा—'अगर हमें अपने बड़ों का आशीर्वाद न मिले तो हमारा हाल अच्छा कैसे रह सकता है।'

संकेत समझकर पण्डितजी एकदम मुस्करा पड़े और बोले 'अरे, तू तो अब बड़ी हो गई है। बड़ों की-सी बातें करने लगी। कुछ बातें टालने के लिए कही जाती हैं। इसका मतलब थोड़ा ही है कि मैं कुछ लिखूँगा ही नहीं।'

चिन्ता अलग। सरकारी जिम्मेदारी का बोझ। ऊपर से ये छोटे-मोटे सामाजिक और सांस्कृतिक काम भी। इतना बोझ सिर पर आने से कोई भी व्यक्ति अपने से स्थान थोड़ा-बहुत हिल-डुल तो जाता ही है। लेकिन दुख की बात तो तब होनी चाहिए जब वह अपने मूल को छोड़ दे। पर पण्डितजी तो कभी अपने मूल-स्वभाव से आगे-पीछे नहीं हुए। संवेदनशीलता उनके स्वभाव का मुख्य अंग अन्तिम समय तक रही।

पण्डितजी चम्पारन जिले के दौरे पर थे। स्थानीय नेता और वे कार में बैठे चले जा रहे थे। कार भागी जा रही थी। एक चौराहे पर आकर ड्राइवर दुविधा में पड़ गया कि किधर जाना है। उसे रास्ता नहीं मालूम पड़ रहा था। पण्डितजी ने पास बैठे स्थानीय नेताजी से कहा—"किधर चलना है हम लोगों को ?"

नेता जी ने हड़बड़ाकर उत्तर दिया—"जी, मुझे तो खुद नहीं मालूम।"

इतना सुनना था और पण्डितजी के तेवर बदल गये। उन्होंने तुरन्त कार रुकवाई और बोले—"आप नीचे उतर जाइये। आप इस क्षेत्र के नेता हैं और आपको इस क्षेत्र का भूगोल तक नहीं मालूम।"

अभिव्यक्ति होने के बाद अथवा यूं कहना चाहिए कि व्यक्ति के दोष के प्रति उसका ध्यान दिलाने के बाद जब अपना मन तो शान्त हुआ लेकिन अभद्र व्यवहार करने वाले का मन अशान्त हो गया तो उसे भी शान्त करना दूसरे प्रकरण का कार्य होता था। किसी ने गलती की, अभद्र व्यवहार किया, वदनमीजी की तो बस उस पर गुस्सा करके अपने मन का भड़ास निकाल लिया। नहीं, इतना ही पर्याप्त नहीं। जो लोग केवल इतना ही कर पाते हैं उन्हें पण्डितजी से उनकी जीवनी से सीखना चाहिए कि इसके आगे और भी बड़ी जिम्मेदारी होती है। जिस पर गुस्सा किया गया है, भले ही उसने गलती की है पर यदि सही दिशा न पकड़ कर वह गलत दिशा पर कदम बढ़ा ले तो ! वह मन-ही-मन सोच सकता है कि ठीक है मौका आने दे मैं भी तुझे बताऊंगा। इसका मतलब तो यह हुआ कि क्रोध करने वाले ने गलती करने वाले की गलती पर तो ध्यान आकर्षित कर दिया लेकिन साथ ही उसे प्रतिहिंसा की ओर दिशा देकर एक और भी गलती कर डाली। अतः पण्डितजी इस कटु सत्य से भिन्न थे। क्रोध के बाद व्यक्ति को सहलाना उनके स्वभाव में ही घुल-मिल गया था।

कालाकाकर के राजा साहब के छोटे भाई श्री सुरेश सिंह कार चला रहे थे और पण्डितजी उनके साथ बैठे हुए थे। इन लोगों को रायबरेली जाना था लेकिन मार्ग में सुल्तानपुर में भी एक सभा का आयोजन स्थानीय नेताओं ने कर डाला। कार चली जा रही थी। सुल्तानपुर का सभा-स्थल समीप आया तो अगल-बगल खड़े लोगों ने जय-जयकार करते हुए उन पर फूल बरसाने शुरू कर दिये। फूल आगे बैठे सीतला सहाय जी और कार ड्राईव कर रहे श्री सुरेश सिंह जी पर भी आ रहे थे। कुछ फूल सुरेश सिंह जी के चेहरे पर आकर गिरने लगे। उल्लास और जोश में लोग कार के आगे आ-आकर फूल बरसा रहे थे। यह

देखकर पण्डितजी ने मौके की नजाकत को समझा। साथ ही वे गुस्से से भर उठे। कार रुकवाकर उन्होंने फूल बरसा रहे एक नौजवान को कहा—"यह कौन-सा तरीका है फूल फेंकने का? अभी ड्राईवर की आंख में फूल लग जाये तो कार बहकने से आप लोग भी तो घायल हो सकते हैं।"

लोग उनकी झिड़की से एकदम सहम गये। फूल बरसाने वाले नौजवान की स्थिति भी बड़ी दयनीय हो गई। सभा-स्थल अभी भी कुछ दूर था। पण्डितजी ने देखा कि झिड़की खाने के बाद नौजवान का मुंह उतर गया है। सभी कार से नीचे उतर चुके थे। पण्डितजी ने उस नौजवान के कन्धे का सहारा लिया और बोले—"अब आप खड़े-खड़े मुंह क्या देख रहे हैं मेरा। चलिए मुझे मंच तक छोड़कर आइये।"

वह नौजवान तो जैसे निहाल ही हो गया। अब उसे अपनी गलती पर दुख नहीं गर्व था। अगर वह यह गलती न करता तो पण्डितजी का सामीप्य और उनके साथ मंच तक आने का अवसर कैसे मिलता।

भिन्न अवसरों पर स्थिति भी भिन्न-भिन्न रही। अवसर और स्थिति के अनुसार ही व्यवहार भी करना पड़ता था। एक बार पण्डितजी छोटे नागपुर का दौरा कर रहे थे। उन दिनों जनता जंगल कानून को लेकर बिहार सरकार से क्रुद्ध थी। और अपना असन्तोष व क्रोध निकालने के लिए लोग-बाग जंगलों को काट डालते अथवा उसमें आग लगा डालते थे। दौरे के समय ये बातें जब पण्डितजी को बताई गईं तो उन्हें यह सब अच्छा [illegible] लगा। ...नगर से गुजरते हुए उन्होंने खुद भी देखा कि रास्ते [illegible] जगह-जगह आग लगी हुई है और धुआं उठ रहा है। कुछ आगे [illegible] एक छोटे से गांव के पास कुछ लोग हाथ में झंडे लिये [illegible] जी की जय-जयकार कर रहे थे। उन्होंने कार रुकवा

दी और उतरकर उन लोगों से बातें करने लगे। बातों के दौरान पण्डितजी ने पूछा—"आप लोग जंगल कानून से नाराज क्यों हैं ?"

लोगों ने अपनी नाराजगी का कारण बताया तो उन्होंने फिर पूछा—"क्या जंगल में आग भी आप ही लोग लगाते हैं ?"

एक साहसी युवक ने आगे बढ़कर कहा—"हां पण्डितजी, आग भी हम ही लोग लगाते हैं।"

इतना सुनते ही पण्डितजी ने कार में रखा हुआ अपना छोटा-सा डंडा उठाया और कार के बाहर आकर भीड़ पर टूट पड़े। उनका रौद्र रूप देखकर भीड़ तो भाग खड़ी हुई। लेकिन, वे भीड़ के पीछे-पीछे भागते गये। सौ-दो-सौ गज तक जब वे भागते रहे और भीड़ गायब हो गई तो वे बड़बड़ाते हुए लौटे—"जंगल के कानून से नाराज हैं तो जंगल में आग लगा देंगे। अरे, यह तो जनता और देश की जायदाद है, इसे कैसे आग लगाओगे। अपने मतलब के लिए देश और जनता की जायदाद को आग लगा देना किसने सिखाया है ?"

वे जब लौटकर कार के पास आये तो कार ड्राईव कर रहे श्री रमण ने उनसे कहा—"आपके इस छोटे से डंडे में तो बड़ी करामात है।"

पण्डितजी बोले—"जी हां, छोटा होने पर भी यह करामाती है।" फिर उन्होंने डंडे की मूठ घुमाकर उसमें से छोटी-सी गुप्ती निकाली। यह देखकर रमण जी ने चौंककर कहा—"तब तो आपका डंडा अहिंसक नहीं है।"

पण्डितजी ने कार में बैठते हुए कहा—"घबराओ मत। इस डंडे से मैंने बड़ी-से-बड़ी हिंसा यही की है कि एक-आध धार सेब छीला है, बस।"

खकर पण्डितजी ने मौके की नजाकत को समझा। साथ ही वे
[स्से से भर उठे। कार रुकवाकर उन्होंने फूल बरसा रहे एक
ौजवान को कहा—"यह कौन-सा तरीका है फूल फेंकने का?
भी ड्राईवर की आंख में फूल लग जाये तो कार बहकने से आप
ोग भी तो घायल हो सकते हैं।"

लोग उनकी झिड़की से एकदम सहम गये। फूल बरसाने
ाले नौजवान की स्थिति भी बड़ी दयनीय हो गई। सभा-स्थल
अभी भी कुछ दूर था। पण्डितजी ने देखा कि झिड़की खाने
ाद नौजवान का मुंह उतर गया है। सभी कार से नीचे उत
ुके थे। पण्डितजी ने उस नौजवान के कन्धे का सहारा लि
और बोले—"अब आप खड़े-खड़े मुंह क्या देख रहे हैं मेर
लिए मुझे मंच तक छोड़कर आइये।"

वह नौजवान तो जैसे निहाल ही हो गया। अब उसे अ
... न करता
ा अब

पर नहीं पहुंची है। अतः जहाज को तब तक नीचे न उतारा जाये जब तक कार न आ जाये।"

चालक की बात सुनकर पण्डितजी तो भड़क गये और बोले– 'आप लोग क्या समझते है, क्या मुझे पैदल चलना नहीं आता। जहाज को तुरन्त नीचे उतारो, मैं पैदल ही अपने घर चला जाऊंगा।"

जहाज को तुरन्त ही नीचे उतारा गया और पण्डितजी सचमुच ही पैदल चल पड़े। पालम हवाई अड्डे से प्रधान मन्त्री निवास काफी दूर है। सामने बहुत-सी दूसरी कारें खड़ी थी, लेकिन वे किसी में न बैठकर पैदल ही चलने लगे। सबके सब अधिकारी परेशान। किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये। उनकी कार अभी तक भी नहीं पहुंची थी। सारे अधिकारी उनके साथ-साथ पैदल चलने लगे। पूरे हवाई अड्डे पर तहलका मच गया। पुलिस की कार वायरलैस और मोटर साईकिलें मौजूद थी। बड़े-बड़े अफसर इधर-उधर परेशानी की हालत में भाग दौड़कर रहे थे। तभी उनकी कार आ पहुंची। उनके सैक्रेटरी ने कार का दरवाजा खोला। कार पर तिरंगा झंडा लगाया। वे गुस्से से कार में बैठे और ड्राईवर से कहा—"एयर मार्शल मुकर्जी के बंगले पर चलो।"

मोटर में बैठे सभी लोग सकते में आ गये। पता नहीं क्या अघटित घटने वाला था। कार जब मुकर्जी के बंगले पर पहुंची तो वे अखबार पढ़ रहे थे। बंगले में मोटर साईकिल, पुलिस और वायर लैस की आवाज सुनकर श्रीमती शारदा मुकर्जी तो एकाएक घबरा ही गई। सभी आश्चर्य-चकित थे। मुकर्जी ने सकपका कर अभिवादन किया। पण्डितजी तो बंगले के भीतर पहुंच गये थे। उन्होंने कहा—"देखिये, आपके वैमानिक अपना काम ठीक से नहीं करते। इन लोगों ने सिर्फ इसलिए मेरा जहाज नीचे नहीं

करने वाली भीड तो है मगर ऐसी भीड़ के पीछे डडा लेकर भागने वाला प्रधान मन्त्री तो क्या कोई मुख्य मन्त्री भी नही है। ऐसी भीड को देखकर पुलिस वाला भी सोच लेता है कि मैं इस समय ड्यूटी पर नही हू । पुलिस इन्सपेक्टर भी सोच लेता है कि यह मेरा इलाका नही है । नेता, मन्त्री और समाज-सुधारक भी सोच लेता है कि ऐसी भीड से टकराना समझदारी नही है। यह आज के समय की सबसे बड़ी विडम्बना है। सभी अपने अधिकारो के प्रति तो सजग है, लेकिन अपने कर्त्तव्य के प्रति चेतन कोई भी नही है। इतने बडे देश के प्रधान मन्त्री को क्या पडी है कि वह खुद भीड के पीछे डडा लेकर भागे। पुलिस को आज्ञा देकर ऐसी भीड को जेल मे ठूंसा जा सकता है, लेकिन यह काम वही करेगा जो ऐसी भीड और ऐसी जनता से अपना सीधा और स्पष्ट रिश्ता नही समझता। पण्डितजी जो पूरे देश को अपना समझते थे और समूचे देश की जनता का समझते थे, उनके लिए स्वय डडा लेकर भीड के पीछे भागना उनके कर्त्तव्य का एक अग ही तो था।

एक बार वे पजाब के दौरे से लौट रहे थे। उनका हवाई-जहाज जब दिल्ली पहुचा तो ऊपर आसमान पर चक्कर लगाने लगा। जब जहाज चार-पाच चक्कर लगा चुका तो पण्डितजी को हैरानी हुई। उन्होंने देखा कि मौसम भी ठीक है और कोई दूसरा हवाई जहाज भी आसमान पर नही है फिर उनके हवाई जहाज के नीचे न उतरने का क्या कारण है। वे अपनी जगह से उठकर सीधे केबिन जा पहुचे। सभी ने उनका अभि-वादन किया। अभिवादन स्वीकार करते हुए उन्होंने चालक से पूछा—"आप लोग हवाई जहाज नीचे क्यों नही उतार रहे हैं?"

विमान चालक ने सन्देश-वाहक की ओर देखकर कहा—"हमें नेसे सन्देश मिला है कि आपकी कार अभी तक हवाई अड्डे

उतारा कि मेरी कार नहीं आई थी। ये समझते है कि मैं पैदल चल ही नहीं सकता हूं।"

एयर मार्शल मुकर्जी ने कहा—"अच्छी बात है मैं इसका पता लगाऊंगा।"

पण्डितजी मुस्करा पड़े और बोले—"क्या पता लगायेंगे आप। पता तो मैंने लगा लिया कि इस वक्त आप अखबार पढ़ रहे हैं। अब भूल जाइए। अच्छा, अलविदा।"

और वे हँसते हुए अपनी कार में आ बैठे और अपने निवास स्थान की ओर चल पड़े।

ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण है जो इस सत्य को उजागर करते हैं कि पण्डितजी का गुस्सा सतही हुआ करता था लेकिन साथ ही सार्थक भी। उनके गुस्से ने कभी किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं बल्कि बनाया ही था। साधारण व्यक्ति को जब क्रोध आता है तो उसमें मूल कारण होता है उसकी कोई व्यक्तिगत हानि अथवा भय। व्यक्ति के अहंकार को चोट पहुंचे तो भी वह तिल-मिला जाता है। पर पण्डितजी में तो अहंकार जैसी कोई बात थी ही नहीं। राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि, अभद्र व्यवहार, जनता के हितों पर चोट अथवा राष्ट्रीय भावना व नागरिक भावना का अभाव ही उनके क्रोध का कारण हुआ करते थे। ऐसे कारण को पाकर क्रोधित होना अवगुण कहां हुआ। देश, समाज और जनता के हित में तो ऐसा क्रोध गुण ही माना जायेगा।

पण्डितजी मसूरी पहुंचे तो दर्शकों की भीड़ ने उनका निवास स्थान घेर लिया। उस दिन फोटोग्राफर भी बहुत से जमा हो गये थे। उन्हें पता था कि प्रधान मन्त्री कुछ ही देर में घटाघर के पास से गुजरेंगे। अतः सभी फोटोग्राफर वहां अपने-अपने कैमरे लिये खड़े थे। देर होने पर एक फोटोग्राफर उनके निवास स्थान पर ही आ पहुंचे। भीड़ तो पहले से ही बहुत थी। पण्डितजी

है। लिंग, जाति, धर्म और वर्ण का भेद भूल-भालकर उन्होंने सभी को गले लगाया। सभी का प्रेम जीता और अपना स्नेह लुटाया। बड़े घर में जन्म लेकर भी कांटों की राह चुनी। सारा जीवन संघर्ष और सेवा में ही व्यतीत कर दिया। विदेश में शिक्षा प्राप्त करके आने के बाद से आजादी होने तक उनका सम्पूर्ण जीवन आजादी की लड़ाई लड़ते ही बीता। इस संघर्ष काल में भी आधा समय तो जेल की दीवारों के भीतर ही काटना पड़ा। इतने पर भी कभी कुंठा या असन्तोष की लकीर चेहरे पर नहीं उभरी। आजादी के बाद गोवा-आन्दोलन के समय जब पुर्तगीज सरकार के विरुद्ध आन्दोलनकारी गोवा जा-जाकर अपने प्राणों की होली खेल रहे थे तो एक साम्यवादी नेता ने कहा था—'नेहरू खुद आन्दोलनकारी बनकर पुर्तगीज सरकार के विरुद्ध आवाज क्यों नहीं उठाते। साधारण व्यक्तियों को आन्दोलन की आग में झोंक-कर खुद मजे से दिल्ली में बैठे हैं।' यह बात कहते हुए साम्यवादी नेता यह तथ्य भी भूल गये कि नेहरू नाम के इस व्यक्ति ने लो वर्षों तक उन लोगों के बन्दूक के सामने सीना तानकर रखा था जिनके साम्राज्य में सूरज कभी डूबता ही नहीं था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में जब प्राण हर समय हथेली पर ही रहते थे, तब उनको क्या मालूम था कि एक दिन उन्हें इसी देश का प्रधान मन्त्री भी बनना पड़ेगा। उनके तो पूरे परिवार ने राष्ट्रीय आन्दोलन और आजादी के खातिर अपना सर्वदान दिया था, अनेक बलिदान किये थे। उनके पिता श्री मोतीलाल नेहरू, माता श्रीमती स्वरूप रानी, बहन विजय लक्ष्मी पण्डित, पत्नी कमला नेहरू और पुत्री इन्दिरा गांधी ने न केवल जेल की दीवारों को देखा बल्कि अंग्रेज हुकूमत के जुल्म भी सहे थे। इतना कुछ त्याग कर और इतना कुछ सहकर भी उस व्यक्ति के मन में भाई-चारे और प्रेम का शीतल झरना बहता रहा तो इसे उनकी महानता

था। कांग्रेस के सम्पन्न सदस्य जब लाहौर आये तो वे अपने साथ खादी के दो थान लेते आये। एक गांधी जी को और एक पण्डित-जी को भेंट देने के लिए। उस समय पण्डितजी लाला हरकिशन-दास गाभा की कोठी पर ठहरे हुए थे। जब वे सज्जन खादी का थान लेकर पण्डितजी के पास पहुंचे तो उस समय वे लान में टहल रहे थे। सज्जन को देखते ही पण्डितजी ने उनका स्वागत किया और बोले—"अरे आप! कैसे आना हुआ?"

सज्जन ने कहा—"आपके दर्शन करने के साथ ही यह खादी का थान भी आपको भेंट करना था।" इतना कहकर उन्होंने थान पण्डितजी की ओर बढ़ा दिया। थान लेते हुए उन्होंने पूछा—"यह कहां का बना हुआ है?"

सज्जन बोले—"जम्मू कश्मीर में साम्बा का बना हुआ है।"

पण्डितजी ने खादी का भाव पूछा तो वे सज्जन बोले—"इसे मैं बेचने नहीं आया बल्कि आपको भेंट करने लाया हूं।"

"तो फिर ठहरिये, मैं भी आपको खादी के कुछ नमूने दिखाता हूं।" कहकर पण्डितजी ने नौकर के हाथों अपना सूटकेस मंगवाया और उन्हें खादी के कुछ नमूने दिखाये। साथ-साथ वे भाव भी बताने लगे—"नमूना नम्बर एक सौ रुपये प्रति गज है। नमूना नम्बर दो चार सौ रुपये प्रति गज है। नमूना नम्बर तीन आठ सौ रुपये प्रति गज है और नमूना नम्बर चार एक हजार रुपये प्रति गज है।"

सज्जन को उन चारों नमूनों में कोई विशेष बात या अन्तर नहीं दिखाई दिया। वे आश्चर्य-चकित होकर कभी खादी तो कभी पण्डितजी की ओर देखने लगे। फिर पूछा—"इस खादी में ऐसी क्या विशेषता है?"

पण्डितजी ने कहा—"इसकी विशेषता यह है कि नम्बर एक का सूत हमारे पिताजी के हाथ का कता हुआ है। नम्बर दो का

ही कहना होगा।

बड़प्पन, गर्व या अहंकार उन्हें न तो आजादी के बाद प्रधान मन्त्री बनने पर, न ही उससे पहले कभी छू सका। जिससे भी मिले, जब भी मिले एक साधारण व्यक्ति की तरह। वे इस सत्य को अच्छी तरह समझते और मानते थे कि कोई भी व्यक्ति देश व, समाज की सेवा तो तभी कर सकता है जब उसमें अपने साथियों अपने भाईयों और आस-पास रहने वाले लोगों की सेवा करने का भाव हो।

घटना आजादी से पहले की है। लखनऊ में कांग्रेस सेवादल की सभा का आयोजन था। सभी जिलों और प्रान्त से सदस्यगण आये थे। एक ही स्थान पर सबको ठहराने की व्यवस्था की गई थी। पण्डितजी जिस कमरे में थे, वहां उनके और भी कुछ साथी थे। रात का समय था। सभी सो चुके थे। अचानक पण्डितजी की आंख खुल गई। अंधेरे में उन्होंने किसी के कराहने की आवाज सुनी। कोई जोर-जोर से कराह रहा था। उन्होंने लाइट जलाई और देखा कि उनके सेवादल का एक सदस्य पेट के दर्द से बेचैन होकर कराह रहा है। उन्होंने तुरन्त पानी गरम किया और उस साथी की टकोर करने लगे। साथी को दर्द से आराम मिला, फिर भी वे रात भर टकोर करते रहे और उनके पास बैठे रहे। किसी को जगाने और कष्ट देने की जरूरत उन्होंने नहीं समझी। यदि वे चाहते तो उनके कहने मात्र से अथवा आयोजकों की ओर से अच्छे से अच्छा उपचार उपलब्ध हो सकता था और पण्डितजी स्वयं रात भर मजे से आराम की नींद सो सकते थे। लेकिन, सेवा भाव ने नींद को पीछे धकेल दिया था। प्रधान मन्त्री बनने के बाद भी उनका यही सेवा भाव पूर्ववत बना रहा।

अहंकारहीनता और समदृष्टित्व से सम्बन्धित एक और प्रसंग भी इसी प्रकार का है। लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन

दुख-सुख की बातें भी की थी। एक बार श्री प्रकाश जी इलाहाबाद पहुचे। उस दिन होली थी और पण्डितजी को होली खेलने का बड़ा चाव था। नेहरूजी अपने साथियो के साथ पिचकारियां लेकर जब श्री प्रकाश जी के पास पहुचे तो उन्होंने इन्कार करते हुए कहा—"भई मुझे अहमदाबाद जाना है और मैं अपने साथ सिर्फ तीन धोती और कुरते ही लाया हू। मुझे बख्शो।"

लेकिन, पण्डितजी कहा मानने वाले थे। श्री प्रकाश जी की धोती रग में खूब रग डाली। धोती ऐसी हो गई कि हारकर श्री प्रकाश जी को वह वही छोड़कर अहमदाबाद जाना पड़ा। कुछ [illegible]न बाद ही दोनों मित्र प्रतापगढ़ में एक सार्वजनिक सभा में [illegible]ल गये। पण्डितजी उन्हें अपने स्थान पर ले गये और वह धोती [illegible]ते हुए बोले—"आपकी धोती का कर्ज मैं नहीं उठा सकता। [illegible]भालिए अपनी धोती। मुफ्त में ही धुल गई है।"

होली पर रंग डालने की जिद और फिर धोती को धुलाकर [illegible]ापस करने की उनकी अदा पर श्री प्रकाश जी मुग्ध हुए बिना [illegible] ही रह सके।

मत-भेद और मन-भेद मे अन्तर है, इस बात को बड़े मन [illegible]ला ही समझ सकता है। पण्डितजी बड़े और विशाल हृदय के [illegible]क्ति थे और वे मत-भेद व मन-भेद के अन्तर को बखूबी [illegible]मझते थे। मत अथवा विचार में समानता न होते हुए भी मन [illegible]ो मिले हुए रह हो सकते हैं। मत मे भेद होने पर मन पर भी [illegible]ल आ जाये तो यह सकीर्णता मानी जायेगी। उस दिन सभा [illegible]वन मे कांग्रेस महासमिति की बैठक थी। सभा भवन की [illegible]ीढ़ियों के नीचे बहुत से दर्शक खड़े थे। तभी एक चमचमाती [illegible]ई कार आई। पण्डितजी कार से उतरे और पलक झपकते ही

सूत महारानी ग्वालियर के हाथ का कता हुआ है । नम्बर तीन का सूत रवीन्द्रनाथ ठाकुर के हाथ का कता हुआ है, और नम्बर चार का सूत महात्मा गांधी के हाथ का कता हुआ है।"

सारी बात समझते हुए सज्जन मुस्करा दिये और बोले "आप भाग्यशाली है जो महान लोगो के हाथ का कता सूत व खादी संग्रह कर सके हैं।"

पण्डितजी ने कहा—"आपका यह थान लेकर तो मे महानता मे बढोतरी हुई है। आप क्या महान नही है ?"

सज्जन ने हँसते हुए कहा—"मैं महान तो नहीं हू, लेकि मुझे महान कहना आपका बड़प्पन जरूर है। बहरहाल आप द थान तो स्वीकार करें।"

पण्डितजी ने स्नेहसिक्त होकर कहा—"भई भेंट स्वीका करने का मतलब होता है मै कोई बड़ा हू और आप कोई छो है। जबकि मेरा यकीन तो भाई-चारे और आपसदारी में है हां, एक शर्त पर ही आपकी भेंट स्वीकार कर सकता हूं और व शर्त यह है कि आप भी मेरी भेंट स्वीकार करें ताकि मैं समझ सकूँ कि हममें आपस मे दोस्ती, भाई-चारा और याराना है।"

सज्जन ने कहा—"यह तो मेरा सौभाग्य होगा। आपकी भेंट सिर आंखों पर।"

और बदले में पण्डितजी ने उन्हें एक कापी भेंट की जिसमे अनेक महान नेताओ के हस्ताक्षरों के अतिरिक्त पिता श्री मोती लाल, माता श्रीमती स्वरूप रानी, बहन विजयलक्ष्मी पण्डित और धर्म-पत्नी श्रीमती कमला नेहरू के हस्ताक्षर थे।

श्री प्रकाश जो नेहरू परिवार के निकटमत व्यक्तियो में से रहे हैं। पण्डितजी का तो उनके साथ विशेष ही प्रेम और दोस्ताना था। अपनी मृत्यु से चार दिन पूर्व पण्डितजी ने देहरादून में उनसे

अनुशासनप्रिय

रामायण हम सबने पढ़ी है। कितने लोग जानते हैं। अंग
पांव रख दिया। कोई उठा न सका। ऐसे ही मैं क
अपना पांव ऐसी मजबूती से रखो कि कोई हिला न पाये
मजबूती कैसे आयेगी? एकता से। सब भाई एक
—जवाह

तीन-चार दशाब्दी पूर्व तक ऐसा भी समय गया है ज
तीन-चौथाई हिस्से पर अंग्रेजों का राज्य था। दुनिया

आठ-दस सीढ़ियां चढ़ गये। लेकिन फिर एकाएक ही ठिठक खड़े हो गये। चौंककर इधर-उधर देखा, फिर नीचे की ओर दे और तुरन्त ही उसी तेजी से वापस नीचे उतर पड़े। उनके ष ही सरदार पटेल भी आये थे। लेकिन अस्वस्थता और वृद्ध के कारण वे धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने का उपक्रम कर रहे थे पण्डितजी उनके पास पहुंचे और उनकी बाँह पकड़कर सहारा हुए उन्हें सीढ़ियां चढ़ाने लगे। नीचे खड़े दर्शक देख रहे थे औ बातें कर रहे थे। उन दिनों दोनों के मत-भेद की चर्चा जोरों थी। लोगों को, दर्शकों को और पत्रकारों को उनके मत-भेद बात मालूम थी लेकिन आँखों के सामने जीवित सत्य तो यह कि दोनों में मन-भेद बिलकुल भी नहीं है। वैसे भी पण्डितजी वैचारिक मत-भेद को मन की वस्तु कभी नहीं बनने दिय उनका हृदय सागर की तरह विशाल था। आगे बढ़ने की धुन उन्होंने कभी किसी को धक्का नहीं दिया। वे कहा करते थे "आगे बढ़ो मगर किसी को धक्का देकर नहीं। हो सके तो आ आस-पास वालों को भी आगे बढ़ने में मदद करो।" जो व्यक्ति सारे राष्ट्र को, सारे विश्व को आगे लाने की बात सोचता र हो, वह अपने साथी को पीछे छोड़कर कैसे जा सकता है। मत-भे मित्रों में भी होते हैं और शत्रु के साथ भी मनमेल हो सकता है पण्डितजी का दोस्ताना रुख, भाई-चारे की भावना और आत्मी यता उनके मानसिक किले की ऐसी मजबूत दीवार थी जिसमें दरार मत-भेद और वैमनस्य ने कभी प्रवेश करने का साहस ह नहीं किया।

जन्म, उनकी शिक्षा-दीक्षा उनके लालन-पालन और जीवन-यापन ऐसे परिवार और वातावरण में हुआ था जहां अनुशासन जीवन के साथ पहली शर्त हुआ करती थी। तौर तरीके, कायदे-नियम और अनुशासन के बल पर ही तो वे जीवन भर भारतवासियों के दिल पर राज्य करते रहे।

सन् 1941 की बात है। उन दिनों पण्डितजी लखनऊ सैण्ट्रल जेल में थे। राजनैतिक कैदियों का खाना तैयार होते ही मेज पर सजा दिया जाता था। एक दिन उस मेज पर पण्डितजी सहित सात व्यक्ति बैठकर खाना खा रहे थे। श्री चन्द्र सिंह गढ़वाली भी इनके साथ मेज पर बैठकर खाना खा रहे थे। श्री सिंह को शक्कर की जरूरत पड़ी। शुगर पाट कुछ दूर रखा हुआ था। भोजन के शिष्टाचार के तहत ऐसी स्थिति में उन्हें अपने पास बैठे व्यक्ति से कहना चाहिए था कि कृपया शुगर पाट भिजवाइये। लेकिन उन्होंने सोचा कि क्यों किसी को कष्ट दिया जाये और अपना ही हाथ बढ़ाकर उन्होंने शुगर पाट उठाना चाहा। पण्डित जी ने जब यह देखा तो चावल सने हुए अपने हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया और बोले—"कहो, जवाहर लाल शुगर पाट दे। कहो, जवाहर लाल शुगर पाट दे।"

श्री सिंह तो हँसने लगे और पास बैठे सभी तमाशा देखने लगे। लेकिन पण्डितजी गम्भीर ही बने रहे। उन्होंने श्री सिंह का हाथ भी नहीं छोड़ा और बोले—"कहो, जवाहर लाल शुगर पाट दे।"

हारकर श्री सिंह ने कहा—"अच्छा जवाहर लाल जी शुगर पाट दीजिए।"

इतना कहने पर पण्डितजी ने उनका हाथ छोड़ा। और अपने पास रखा हुआ शुगर पाट उठाकर श्री सिंह की ओर बढ़ाते हुए बोले—"तौर-तरीकों को हमने चूल्हों में झोंक दिया है। इसीलिए

तना प्रिय है कि इसके लिए मैं कभी-कभी खुद भी अनुशासन से
ाहर हो जाता हू। मेरी बात का बुरा मत मानना।

प्राय: देखा जाता है कि कुछ बड़े लोग अपने-आपको कायदे
ानून, नियम और तौर-तरीकों से बाहर की चीज समझने लगते
। उनकी बुद्धि के अनुसार तौर-तरीकों को या नियम को तोड़
र चलने से लोगों में उनके बड़प्पन की धाक जमती है। ऐसे
ोग महा भयंकर रोग के शिकार होते है। सच्चाई तो यह है कि
यक्ति के पास पद, गरिमा और यश आ जाये तो उसके लिए
पने बड़प्पन को बनाये रखने के लिए और अधिक नियमबद्ध,
नुशासनप्रिय होना आवश्यक हो जाता है।

पण्डितजी एक बार लखनऊ के पत्र 'हैराल्ड' में एक लेख
ने के लिये कैसरबाग स्थित पत्र के कार्यालय में गये। सम्पादक
े कमरे के बाहर बैठे चपरासी ने उन्हें देखते ही खुद भी खड़ा
ो गया और दरवाजे पर पड़ी चिक भी उठा दी, लेकिन उसे
शारे से रोकते हुए पण्डितजी ने सम्पादक से मिलने के लिए एक
िट पर अपना नाम लिखा और चपरासी से कहा कि वह चिट
ीतर ले जाकर सम्पादक महोदय को दे दे। चपरासी ने जब चिट

तो हमारी कौम और देश गुलाम हैं।"
उस समय श्री चन्द्र सिंह गढ़वाली ने भी इस बात
स्वीकार किया कि नियम और तौर-तरीके जीवन में बहु
आवश्यक है।
अनुशासन प्रियता देश और समाज की उन्नति के लिए पहली
शर्त है। जिस व्यक्ति में तौर-तरीके और नियम की पाबन्दी नहीं
होगी निश्चित रूप से उसमें नागरिक भावना भी नहीं होगी।
जिसमें नागरिक भावना नहीं होगी उसमें राष्ट्रीय भावना के होने
का प्रश्न ही नहीं उठता। नागरिकों में राष्ट्रीय भावना
र राष्ट्र की उन्नति की बात करना अथवा सोचना रे
कुआ खोदने जैसा ही है। पण्डितजी ने राष्ट्र निर्माण
ो मानसिक रूप से तौर-तरीकों और अनुशासन से जोड़
ा। यही कारण है कि उन्हें इसके विरुद्ध आचरण देखकर
ा जाया करता था।
एक बार वह ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। स्टेशन पर गाड़
वह बाहर दरवाजे तक आये। उन्हें वहीं दरवाजे पर ख
पण देना था। डिब्बे के सामने बहुत ही भीड़ जमा हो
क युवक दरवाजे के हैंडिल को पकड़कर उनके मुंह-से-मुंह
खड़ा हो गया। न तो लोग पण्डितजी को देख पा रहे थे
ही पण्डितजी लोगों को देख सकते थे। वह लगातार पण्डि
चेहरे को देखे जा रहा था। यह सब देखकर वे भड़क उठे
—'यह क्या बदतमीजी है? आप तो मेरे मुंह के सामने
हो गये कि मैं किसी को देख ही नहीं सकता। ह
से।
बेचारा युवक अपना-सा मुंह लेकर वहां से हट गया
लगा। तभी पण्डितजी ने उसे पुकारा—"सुनिये।"

यह सुनकर सक्सेना जी ने अपनी गलती मानी और बहुत ही लज्जित हुए। निर्जीव वस्तु को साकार मानना और उसमें प्राण प्रतिष्ठा करने वाला व्यक्ति भला नास्तिक हो सकता है। और क्या ऐसा व्यक्ति कभी अधर्मी हो सकता है? ऐसे व्यक्ति के हाथों भला कभी कोई अनीति हो सकती है?

पण्डितजी का विचार रहा है कि पुस्तकें हालांकि कागज होती हैं लेकिन प्राणवान होती हैं। पुस्तकों में महान आत्म के अमर सन्देश निहित होते हैं। इसलिये पुस्तकों के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसे छोटे शिशु अथवा मह आदरणीय व्यक्ति के साथ किया जाता है। यह तो सर्वविदि सत्य है कि पण्डितजी पुस्तक प्रेमी थे। नेता होने के साथ-साथ लेखक भी थे। लेखक होने के नाते भी पुस्तक प्रेमी होना जरू है। ऐसे में उन्हें हर पुस्तक प्रेमी से यह आशा रहती थी कि पुस्तक को रखने में सही ढंग से व्यवहार करेगा।

लखनऊ के अमीनुद्दौला पार्क में अपने मित्र मोहन ला सक्सेना के यहा वे एक बार ठहरे हुए थे। सक्सेना जी खुद अच्छे पाठक और पुस्तक प्रेमी थे, लेकिन उन्हें पुस्तकें रखने क तौर-तरीका नहीं आता था। उस दिन पण्डितजी अपने काम निपटकर चहलकदमी करते हुए उस अलमारी के सामने ज पहुचे जहा ढेर सारी पुस्तकें उलट-पुलट हालत में पड़ी थीं। कु के कवर फट गये थे, कुछ पर धूल जम गई थी। कुछ मैली-कुचैल हो गई थी। यह सब देखते-देखते अचानक उनकी दृष्टि ए पुस्तक पर अटक गई जो धूल से भरी हुई थी और मैली-कुचैल हो गई थी। उन्होंने पुस्तक को बाहर निकाला और उसे झा पोंछकर साफ किया। यह वही पुस्तक थी जो सक्सेना जी ने पण्डितजी से पढने के लिए मांगी थी और अब इस हाल में पड़ी थी। पुस्तक लेकर वे सक्सेना जी के पास आये और खेद व क्रोध भरी वाणी में बोले—"सुनो मोहनलाल, क्या तुम नहीं मानते कि पुस्तक जीवित वस्तु होती है? इसका हमेशा आदर-मान रखना चाहिए। इसके साथ दुर्व्यवहार करना अनुचित है, बहुत ही अनुचित।"

लेट गया। सर्दी बहुत थी। ज्यों-ज्यों रात बढने लगी सर्दी भी बढने लगी और नौजवान का खांसी के मारे बुरा हाल हो गया। सर्दी में दमा तो ज्यादा ही उभर आता है। बार-बार की खांसी रात के सन्नाटे को चीर जाती थी। खांसी की यह आवाज अब आनन्द भवन में गूंजने लगी और परिणाम यह निकला कि ऊपर की मंजिल पर सोये हुए जवाहरलाल जी की आँख खुल गई। उन्होंने नौकर को आवाज दी और यह देखने के लिए नीचे उतरने लगे कि इस वक्त रात को कौन इतना खांस रहा है। जब वे बरामदे तक पहुंचे तो उन्होंने देखा कि कोई कम्बल ओढे वहां सो रहा है और बुरी तरह खांस रहा है। सर्दी के कारण उसकी खांसी बढ़-बढ़ जाती है। जवाहरलाल जी बिलकुल पास आ गये और कम्बल हटाकर देखा तो चौंक पड़े और बोले—"अरे राजेन्द्र प्रसाद जी आप! भला यह संकोच क्यों? आप बहुत ही सज्जान् व्यक्ति हैं। यहां इतना कष्ट पा रहे हैं, लेकिन मुझे तनिक सा कष्ट देकर उठाने की बात नहीं सोच सके। घर यह घर तो आपका ही है आपको यहां इस हालत में देखकर मैं बहुत दुखी हूं। चलिये अब ऊपर चलिये।"

और पण्डितजी ने खुद उनका बिस्तर अपने हाथों से उठाया और उन्हें ऊपर ले गये। यद्यपि उस समय पण्डितजी को यह नहीं मालूम था कि यह नौजवान कभी आगे चलकर स्वतन्त्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति होगा, लेकिन अपनी भावुकता के अधीन उनका व्यवहार मानवीय ही रहा।

यह एक अजूबा ही है कि बड़े घर में जन्म लेने तथा क्रोधी व कठोर पिता का पुत्र होने के बाद भी पण्डितजी अत्यन्त ही संवेदनशील और भावुक हृदय थे। परपीड़ा देखकर वे चुप-चाप आगे बढ़ गए हों, ऐसा कभी नहीं हुआ। पूरे राष्ट्र को जो अपना समझता है, उसमें बसने वाले हर व्यक्ति को वह अपना समझेगा

यही पीड़ा व्यापक होकर क्या समाजवाद का नारा बनकर नहीं निकली थी ? एक व्यक्ति समाज में किस-किस के दुख को दूर करेगा और सभी का दुख दूर होना भी जरूरी है तो फिर ऐसा ही क्यों न हो कि गरीबी दूर करने की सुविधा में सबको समान अवसर मिले। सबको जीने का समान अधिकार प्राप्त हो। इसके लिए एक विशेष आर्थिक व्यवस्था जरूरी है और इस व्यवस्था के लिए समाजवाद जरूरी है। अतः मनुष्य के नव निर्माण की महान योजनाएं और विचार भावुकता में ही जन्म लेते हैं।

देश का बटवारा हो चुका था। लाखों शरणार्थी उधर से इधर आये थे। कुरुक्षेत्र के शरणार्थी कैम्प का निरीक्षण करने पहुँचे पण्डितजी। लोगों को देश के प्रधानमंत्री से बहुत आशाएं थीं। सभी को आश्वासन दिए, तसल्ली दी। रोते हुए लोगों और मां-बहनों के आंसू पोंछे। शाम को दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा में भाषण देना है और अब वहीं जल्दी भी पहुंचना है। कार स्टार्ट हो चुकी है और वे कार में बैठने जा रहे हैं। लेकिन शरणार्थियों का रेला उनकी ओर बढ़ता ही चला आ रहा है। सभी के हाथ में अर्जियां हैं। पण्डितजी खुद सभी की अर्जियां ले रहे हैं और दिलासा देते जा रहे हैं। चारों तरफ से एक जैसी आवाज और एक जैसा शोरगुल। शोर और गड़बड़ी के इस वातावरण को कभी भी सहन न करने वाला व्यक्ति इस समय चुप है। उसकी आंखों में सामने खड़े लाखों शरणार्थियों के आंसुओं का सागर लहरा रहा है। चारों ओर से आवाजें ही आवाजें। अर्जी देने वाले कह रहे हैं—"पण्डितजी मेरा मुआवजा दिलवा दीजियेगा" पण्डितजी मेरी दुकान" पण्डितजी मेरी पेंशन।" और पण्डितजी सभी की सुन रहे हैं, साथ-साथ दोनों हाथों से अर्जियां ले रहे हैं और कार में रखते जा रहे हैं। कार का इंजिन चालू है, देर हो रही है। दिल्ली में सार्वजनिक सभा

कि अब बस्ती उनके बच्चों की परीक्षा के बाद ही हटाई जायेगी। अर्थात् कहने को कह दिया पण्डितजी ने कि मैं कुछ नहीं कर सकता। लेकिन इस कठोर व्यवहार की स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। लोगों के जाने के बाद भावुक मन कहां माना होगा। लोगों का दुख साकार होकर सामने आ खड़ा हुआ और सेक्रेटरी को बुलाकर आदेश दे दिया—"भई देखना, अभी जो लोग आये थे उनकी बस्ती हटने वाली है। कहते हैं परीक्षा तक ठहर जाइये। ठहरना ही होगा।"

असंख्य शरणार्थियों की तरह एक बुढ़िया भी सीमा-प्रान्त से आई थी। बेचारी बड़ी दुखी और परेशान हाल थी। इसके-उसके [illegible] नहीं थी उसकी [illegible] गी कि कोई [illegible] "प्रधान मन्त्री की कोठी पर चली जा। वे सुनेंगे तेरा दुखड़ा।"

वह दुखी और परेशान तो थी ही, आ पहुंची प्रधान मन्त्री की कोठी पर। पण्डितजी जब सामने आये तो दुख, निराशा और कुंठा की मारी उस बुढ़िया ने जी भरकर उन्हें गालियां दीं। पण्डितजी खड़े-खड़े मुस्कराते रहे। सुरक्षा अधिकारी आगे बढ़े तो उन्हें इशारे से रोक दिया गया। जब बुढ़िया अपने मन का पूरा भड़ास निकाल चुकी तो चुप हो गई। इस पर पण्डितजी ने उससे कहा—"माताजी कोई और गाली तो बाकी नहीं रह गई?"

फिर तुरन्त ही अपने निजी सचिव को उसे एक हजार रुपये देने के लिए कहा। जब एक हजार रुपये बुढ़िया के हाथ में पहुंचे तो वह बहुत ही लज्जित हुई और बोली—"मैंने तो गालियां दीं और तुमने रुपये दे डाले।"

भावुकता के प्रवाह में बहते हुए भी पण्डितजी ने विनोद से

से भावना देता है। लेकिन उनके प्यारे राजनीतिज्ञों को छोड़कर दुख में आ जाते हैं उनके वे दुःखी छोड़कर जाने को तैयार नहीं है। ऐसे में और ऐसे उपेक्षित पद पर आसीन व्यक्ति प्रायः मानवीय होते हैं। ऐसे में वे अपने देश हेतु अथवा किसी की महानता को यहां छोड़कर अंजिला उत्ता करने या काम सौंपकर उन्हें वह सकते थे लेकिन मन के कोने भावुकता ने छुटकारा दिला दिया।

यदि व्यक्ति बुनियादी और से कठोर नहीं है तो वह कठोर होकर भी कितना कठोर होगा। उसके मन की भावुकता उसकी कठोरता को ले डूबेगी। यह स्पष्ट है कि पण्डितजी ऊपर से कठोर ही दिखाई देते थे लेकिन उनसे भी बड़ा सच यह है कि वे भीतर से बहुत ही कोमल थे। बिलकुल नारियल की तरह। जो ऊपर से कठोर होते हुए भी भीतर से एकदम नरम, सफेद और मीठा होता है। एक बार दिल्ली की किसी बस्ती के कुछ लोग प्रधान मंत्री के निवास स्थान पर पहुंचे साथ में एक प्रार्थना पत्र लेकर। उनकी बस्ती किसी बन रहे मार्ग के बीच में आती थी तो उसे गिराया जाना था। वे लोग प्रार्थना लेकर पहुंचे कि उनके बच्चों की परीक्षाएं बहुत ही नजदीक आ गई हैं। इसलिये कुछ दिनों की मोहलत दी जाये और इस बस्ती को फिलहाल गिराने से रोका जाये। पण्डितजी ने उनकी प्रार्थना सुनी और पढ़ी तो बोले—"इसमें मैं क्या कर सकता हूं, आप लोगों ने मुझे कारपोरेशन का इन्सपेक्टर समझ रखा है क्या? आप लोग जाइये। मैं इस बारे में कुछ भी नहीं कर सकता।"

बस्ती के वे लोग निराश और दुखी होकर वहां से लौट पड़े। सभी को एक ही चिन्ता थी कि रहेंगे कहां और ऐसे वक्त में उनके बच्चों को स्कूल में दाखिला कहां मिलेगा? सभी अपने-अपने भाग्य को रोते लौट आए।

लेकिन, अगले दिन बस्ती के लोगों तक यह [illegible] गई

आयगा। फिर भी मैं कोशिश करूंगा।"

सचमुच बहुत ही पेचीदा मामला था और कानूनी अड़चनों से भरा हुआ था। एक व्यावहारिक और जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह कतई संभव नहीं था कि ऐसे व्यक्ति को जो कत्ल और डकैती के तेइस मामलों से घिरा हुआ है, सरकारी माफीनामा दिलवा सके। लेकिन द्विविधा तो यह थी कि पण्डितजी केवल व्यावहारिक ही नहीं थे बल्कि उससे अधिक भावुक थे। उन्होंने इससे-उससे बात करके 'स्वतन्त्र जी' के सारे वारण्ट कैंसिल करा दिये और उन्हें 'नेहरू ब्रिगेड' की कमान पकड़ा दी।

1 मई, 1960 के दिन महाराष्ट्र दिवस पर पण्डितजी बम्बई आये। दिन-भर तो दिल्ली के कार्यक्रमों से थके हुए थे और अर्ध-रात्रि को राज भवन में उत्सव था और सुबह जल्दी ही राष्ट्र मंडल के सम्मेलन में भाग लेने के लिए लन्दन जाना था। अतः उनके लिए आराम करना बहुत ही जरूरी था। मई दिवस का उद्घाटन भाषण समाप्त होते ही उन्हें जाना था। चारों ओर सुरक्षाधिकारियों तथा पुलिस व्यवस्था थी ताकि कोई हैरान न करें। इतने पर भी कुछ पत्रकार दूर एक कोने में अवसर की ताक लगाये बैठे थे। चूंकि पण्डितजी अगले दिन सुबह राष्ट्र मंडल के सम्मेलन में जा रहे थे जहां गोरे और रंग-भेद की नीति पर विचार होने वाला था तो वे पण्डितजी के विचार जानना चाहते थे। यह अवसर पत्रकारों के लिए चूकने का था ही नहीं। पर पुलिस और सुरक्षा वालों ने पत्रकारों को पास फटकने ही नहीं दिया। सारे-के-सारे पत्रकार परेशान थे कि क्या करें। तभी एक तेज और चुस्त पत्रकार ने एक कागज पर निवेदन लिखकर किसी प्रकार उन तक पहुंचा दिया। फिर क्या था पण्डितजी पुलिस, सुरक्षा और मन्त्रि मंडल का घेरा तोड़कर पत्रकारों के बीच आ पहुंचे और लगे देने उनके सवालों के जवाब। पत्रकारों को तो

[illegible]

... किसी के बस का यह काम नहीं है।

क्रान्तिकारी नेता सरदार तेजा सिंह 'स्वतन्त्र' एक ब...
इन्सान थे। उन्होंने अंग्रेजों को नाकों चने चबवा दिये...
लगातार पन्द्रह वर्षों तक फरार रहे। यू० पी० में रहते, इ...
सरकार ने लगभग 21 मुकदमे उनके खिलाफ चला...
पुलिस ने बहुत यत्न किया उन्हें पकड़ने का मगर, वे ...
हाथ नहीं आये। चूंकि श्री 'स्वतन्त्र' एक आवाम इंसान...
क्रान्तिकारियों के मित्र थे, इसलिए कुछ क्रान्तिकारी प...
के पास पहुंचे और कहने लगे—"अब 'स्वतन्त्र' जी अ...
जीवन लोक सेवा और देश सेवा में लगाना चाहते हैं। अ...
आप उनके वारन्ट कैंसिल करा दें तो वे अपना नया जी...
कर सकेंगे।"

नेहरू जी ने कहा—"इस बारे में तो बहुत-सी कानूनी

से पूर्व अपने कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए रूस जा पहुंचे। लेकिन किन्हीं कारणों से वे साइबेरिया प्रान्त में नजरबन्द कर लिए गये। जब देश आजाद हुआ तो श्री ख़ुश्चेव की सिफारिश पर उन्हें रिहा कर दिया गया। लेकिन उनकी स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। वे आजादी के पहले भारत से गये थे इसलिए इस देश के नागरिक नहीं रहे थे। वे रूस भी भागकर ही पहुंचे थे और वहां भी नजरबन्द रहे थे इसलिए उन्हें वहां की नागरिकता भी प्राप्त नहीं हो सकती थी। जब न वे रूस के रहे न भारत के तो आखिर उन्होंने वहां रूस में ही एक रूसी महिला से विवाह कर लिया और रेडियो ताशकन्द के हिन्दी विभाग में नौकरी भी कर ली। कुछ समय बाद वे ताशकन्द विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हो गये। यह सब हो गया लेकिन नागरिकता फिर भी कानूनन उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती थी। उनके माता-पिता और सम्बन्धी सब दिल्ली में थे। आजादी के खातिर देश से निकला हुआ इन्सान अपने आजाद देश को देखने के लिए तड़प रहा था मगर बिना पासपोर्ट के आना सम्भव नहीं था। पासपोर्ट उसी व्यक्ति को मिल सकता है जो किसी देश का नागरिक हो। पर श्री मदन मोहन तो किसी भी देश के नागरिक नहीं थे। उन्होंने रूस को सरकार तथा भारत सरकार को लिखा और प्रार्थना की। उन्हें यही उत्तर मिला कि बिना किसी देश की नागरिकता प्राप्त किये उन्हें पासपोर्ट नहीं मिल सकता।

इसी दौरान दैनिक 'मिलाप' के सम्पादक श्री रणवीर के छोटे भाई तथा पंजाब के शिक्षा मन्त्री श्री यश रूस यात्रा पर गये तो मदन मोहन जी ने उनके सामने अपनी परेशानी रखी। यश जी ने उन्हें कुछ करने का आश्वासन दिया। भारत लौटकर उन्होंने सारी बात अपने भाई श्री रणवीर जी से कही। श्री रणवीर जी सीधे जा पहुंचे पण्डितजी के पास और बोले—"यह क्या बात

जैसे मनचाही मुराद ही मिल गई। और अगले दिन लोगों ने समाचार पत्रों में पढ़ा पण्डितजी की रंग-भेद की नीति पर उनके विचार।

भारत आजाद हुआ ही था। नवम्बर 1947 में भारतीय सैनिक कश्मीर पहुंचे ही थे कि उनके पीछे-पीछे प्रधान मन्त्री नेहरू भी कश्मीर पहुंचे। वे कश्मीर से भी आगे बारामूला तक गये। वहां उन्होंने गिरजाघर को देखा जहां पाकिस्तानी कबायलियों ने महात्मा ईसा की प्रतिमा को खण्डित कर दिया था और औरतों की बेइज्जती की थी। अनेक घरों और उजड़े हुए लोगों को देखा। वहां की स्त्रियों और बच्चों के गालों पर लुढ़कते आंसुओं को देखा। पाकिस्तानी कबायलियों ने चारों ओर बरबादी का मंजर बना दिया था। वहां पशुता और जंगलीपन की जिन्दा तस्वीरें ही दिखाई दे रही थीं। जब वे बारामूला से चलने लगे तो उन्होंने आगजनी से हुए एक ढेर को देखा जहां कुछ छोटे-छोटे फूल उगे हुए थे। पण्डितजी उस ओर झुके और वे फूल चुनने लगे। उनके सेक्रेटरी ने पूछा—"यह आप क्या कर र[ह]े हैं ?"

पण्डितजी ने कहा—"यहां इस समय इस बारामूला में फूल ही ऐसे हैं जो पशुता और जुल्म से बच गये हैं। इन्हें मैं गा[न्धी] जी को भेंट करूंगा।"

और पण्डितजी उन फूलों को अपने साथ दिल्ली ले आये औ[र] लौटते ही सीधे गांधी जी के पास पहुंचे और उन्हें फूल देते [हुए] कहने लगे—"पाशविकता और बर्बरता की काली छाया से [बचे] आशा, विश्वास, शान्ति और मानवता के प्रतीक ये फूल।"

देश की आजादी के लिए सुभाष बाबू तथा उनकी तरह अ[नेक] अनेक देश-प्रेमी भारत छोड़कर विदेशों में गये और आजादी [का] कार्यक्रम बनाया। उसी तरह थे मदन मोहन हरदत्त भी आज[ाद]

व्यवहार नही सुलझा सका उसे पण्डितजी की भावुकता ने सुलझा दी।

व्यवसाय में तो भावुकता ही होती है लेकिन व्यवहार में भावुकता मनुष्य के लिए मानवता के द्वार खोल देती है। वे ही द्वार जो स्वर्ग की सीढ़ियों की ओर जाते हैं और परम सत्य के दर्शन कराते हैं। विश्व के अनेक राजा, महाराजा, सम्राट, राजनेता और कूटनीतिज्ञ अपने जीवन काल में जन साधारण के लिए हौवा और आतंक बनकर रहे, लेकिन अपनी भावहीनता के कारण इतिहास के पृष्ठों पर अपना चिह्न नही छोड़ सके। जबकि भावुकता की ओर मुड़ने वाले हर व्यक्ति ने मानवता की पगडंडी पर चलकर महानता के सतरंगी इन्द्र-धनुष को छुआ। गांधी और नेहरू ऐसे ही भावुक महाप्राण हुए हैं। गांधी जो भावुक न होते तो लंगोटी क्यों लगाते और पण्डितजी भावुक न होते तो राजसी ठाट-बाट क्यों त्यागते?

प्रधान मन्त्री कोठी में उस दिन दोपहर को लॉन में कुछ मजदूरनें लॉन की घास-फूस साफ कर रही थीं। एक पेड़ की छाया में एक मजदूरन का बच्चा सो रहा था। उस दिन पण्डित जी भी कई दिनों की विदेश यात्रा से लौटकर आराम करने जा रहे थे। एकाएक बच्चा रो पड़ा। बच्चे के रोने की आवाज पण्डितजी के कानों तक आ पहुंची। नेहरूजी नीचे उतर आये और गन्दे कपड़ों में लिपटे उस बच्चे को गोद में उठा लिया। बच्चे की मां ने देखा तो उसके होश गायब। दौड़ी-दौड़ी पास आई, मगर देखती क्या है कि पण्डितजी बच्चे को चुप कराने के लिए उसे हिला-डुला रहे हैं और उसे बहलाने की कोशिश कर रहे हैं। मजदूरन मां ने बच्चे को लेना चाहा तो वे बोले—"अरे तू काम कर अपना। मैं तेरे बच्चे को लेकर भाग तो नहीं जाऊंगा।"

हमारे देश का एक नागरिक आजादी की लड़ाई को व
य बनाने के लिए इस गया और अब दोनों ओर से वहीं
नागरिकता उसके पास नहीं है। न वह इधर का र
धर का। वह अपने मा-बाप, भाई-बहनों से मिलने के
रस और तड़प रहा है।'

रणवीर जी की बात सुनकर पण्डितजी भड़क उठे और
बोले—"उसे हिन्दुस्तानी पासपोर्ट क्यों नहीं मिला अब तक?"

रणवीर जी ने कहा—"यह तो आपका कानून जाने, इसका
उत्तर मैं क्या दूं?"

पण्डितजी और अधिक उत्तेजित हो गये और बोले—
"कानून इन्सान के लिए है, इन्सान कानून के लिए नहीं। ऐसा
कैसे हो गया कि एक हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान के लिए आजादी
लड़ाई लड़ते हुए हिन्दुस्तान से बाहर चला गया और अब वा
अपने मुल्क में नहीं आ सकता। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

पण्डितजी की उत्तेजना और भावुकता बढ़ती ही जा
थी। कानून की अन्धी लाठी के मुताबिक श्री मदन मोहन
भारत लौटने अथवा पासपोर्ट के अवसर नहीं के बराबर ही
यदि कानून में इसकी गुंजाइश होती तो बात कब की बन
होती, लेकिन बात अब कानून और व्यवहार की हद से हटक
भावुकता और मानवता के घेरे में आ खड़ी हुई थी। पण्डित
ने आगे कहा—"साफ बात है कि वह भारतीय है। उसे लिखो
वह भारतीय दूतावास में अस्थायी पासपोर्ट के लिए प्रार्थना
दे दे। मैं भी भारतीय राजदूत को लिखता हूं कि उसका प्रार्
पत्र स्वीकार कर लिया जाये। यहां आने के बाद वह भार
नागरिकता और स्थायी पासपोर्ट के लिए प्रार्थना पत्र दे स
है।"

इस प्रकार श्री मदन मोहन की वह गुत्थी जो कानून

हाजिर जवाब

जिस व्यक्ति के पास अपने अनुभव हों, जिसने दुनिया के उतार-चढ़ाव देखे हों, अध्ययन किया हो, मीठे कड़वे घूँट पीये हों वही व्यक्ति हर सवाल, हर बात और हर उलझन का जवाब दे सकता है। बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि पण्डितजी के बारे में यह मशहूर है कि वे विश्व के पहले आदमी हैं जिन्होंने सारी दुनिया का चक्कर कई बार लगाया और जितना वे देश-विदेश में घूमे उतना और कोई नहीं घूमा। दुनिया की हर जाति, हर कौम और हर कबीले के लोगों से मिले। अध्ययन भी खूब किया। उर्दू और अंग्रेजी पर तो उनका पूरा ही अधिकार था। अपने घर और परिवार की चिन्ता छोड़कर जिसे देश और दुनिया की चिन्ता रही उसका दिल और दिमाग कितना विशाल और वसीह रहा होगा। ऐसे अनुभवी व्यक्ति के लिए किसी भी बात का जवाब देना और सामने वाले को निरुत्तर कर देना क्या मुश्किल बात थी। पण्डितजी के आस-पास रहने वाले लोग जानते थे कि वे हाजिर जवाब इन्सान हैं।

एक बार वे अपने निवास स्थान पर शीर्षासन कर रहे थे कि अचानक गांधी जी आ पहुंचे। उन्होंने पण्डितजी को शीर्षासन करते हुए देखा तो बोले—"जवाहर लाल, तुम सिर के बल क्यों चलने हो?"

पण्डितजी ने कहा—"मैं सिर के बल चलता नहीं, शीर्षासन

सुनकर मां तो निहाल हो गई। पर बेचारी मुंह ताकते असमंजस से देखती ही रही कि बच्चे के गन्दे कपड़े पण्डितजी साफ-सुथरे कपड़ों को गन्दा कर रहे हैं। संसार में ऐसे कि प्रधान मन्त्री हुए हैं जिनकी मनुष्यता के मार्ग में मजदूरन दर्जी और उसके बच्चे के मैले कपड़े रोड़ा नहीं बन सके। नि ही भावुकता वह चुम्बक है जो मानवता को अपनी ओर आक करती है।

इलाहाबाद के एक देहात में पहुंचना था पण्डितजी वहां आम सभा थी। वे कार से अपने साथियों के साथ देहात ओर चले जा रहे थे, लेकिन रास्ते में जब भी कोई छोटा-म गांव आता तो वे कार से उतरकर पैदल ही चलने लगते लोगों के हाल-चाल पूछ लेते थे। चलते-चलते गांव काफी पी छूट जाता तो वे वापस कार में बैठ जाते और गांव आने लग तो पहले से ही कार से उतर पड़ते। बार-बार ऐसा होने तो उनके एक साथी ने पूछ लिया—"पण्डितजी आप बार-ब क्यों उतर जाते है। कितना पैदल चलना पड़ रहा है आपको फिर हमें सभा में भी पहुंचना है। देर हो जायेगी।"

पण्डितजी ने कहा—"भई वह सब तो ठीक है लेकिन सोचता हूं कि गांव के इन गरीब लोगों के तन पर पूरा कप भी नहीं है। ये लोग मोटर तो कभी-कभार ही देखते होंगे। इनके सामने मैं मोटर में बैठकर चलूं तो ये मन में क्या सोचेंगे शायद अपने को हमारे मुकाबले और भी ज्यादा गरीब महसू करने लगें।"

यह था गांधी के उस शिष्य और उत्तराधिकारी का उत्त जिसने देहातों के नंगे बदन लोगों को देखकर यह निश्चय क लिया था कि जब तक हर भारतवासी के तन पर पूरे कपड़े नहं होंगे मैं भी तन पर पूरे कपड़े नहीं पहनूंगा।

अचानक पीछे से एक मनचले लड़के ने आवाज छोड़ी—"सिर्फ तैरते ही रहे है, पार नही पाया है।"

लड़के के दुस्साहस पर वहा सन्नाटा छा गया। प्रबन्ध-कर्त्ता और अधिकारी सकते मे आ गये। भला पण्डितजी के सामने यह हिम्मत करने का खतरा किसने मोल ले लिया। कॉलिज के विद्यार्थियों मे तो आदत ही होती है कि किसी को भी मजाक मे उड़ा दे, लेकिन पण्डितजी कल के इन छोकरो के उड़ाये कहा उड़ने वाले थे। उन्होंने तुरन्त जवाब दिया—"हा, जो मेढक की तरह कुए मे तैरते हैं वे पार पा लेते है, जो समुद्र में तैरते हैं वे तैरते ही रहते हैं।"

हसी की एक गूज उठी और बोलने वाला लड़का सिर छिपाने का प्रयत्न करने लगा। उनका जवाब सटीक था लेकिन, उसमे व्यंग नही बल्कि एक सन्देश था। चुप रहना तो सम्भव था ही नही, साथ ही लड़के के अहकार को चोट न पहुंचाकर उसे इस सत्य का बोध भी कराना था कि सागर की तरह ज्ञान भी अथाह है और उसका कोई पार नही।

बटवारे के बाद शरणार्थियो के जत्थे-के-जत्थे चले आ रहे थे। पण्डितजी खुद इन शरणार्थियो से मिलने, उन्हे हौसला बंधाने और उनकी व्यवस्था करने का काम कर रहे थे। दुख, निराशा और परेशानी मे डूबे हुए लोगो को वे अपनी ओर से भरसक दिलासा दे रहे थे। एक जत्थे मे से एक बुढ़िया बाहर आई और उसने आकर सीधे ही पण्डितजी का कोट पकड़ लिया और उन्हें उल्टी-सीधी सुनाने लगी। वह कह रही थी—"तू तो बादशाह बन बैठा। अब हम लोगों का क्या होगा ? मेरा बेटा मुझसे बिछुड़ गया। अब मैं कहा ढूंढूं उसे ? अब कौन देगा मुझे सहारा ? यह कैसी आजादी है तेरे देश की ?"

भर रहा हूँ। इससे दिमाग की ताकत बढ़ती है।"

गांधी ने फिर विनोद किया—"पर तुम्हारा दिमा
हुआ तो नहीं लगता।"

इस पर पण्डितजी ने कहा—"अच्छा तो अब मैं बकर
दूध पीया करूँगा।"

उनकी यह चुटकी सुनकर गांधी जी हँसने लगे। इसका अ
उनके पास भी नहीं था। उन्हें यह समझने में तो अब कोई आ
ही नहीं थी कि बकरी का दूध पीने से दिमाग बढ़ता नहीं
क्योंकि वे खुद नित्य ही बकरी का दूध पीते थे।

विश्वविद्यालय का दीक्षान्त समारोह था। पण्डि
आमन्त्रित थे। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन भाषण दे रहे
वे कह रहे थे—"आम लोगों का ख्याल है कि सारा ज्ञान पुर
पोथियो मे भरा पड़ा है, लेकिन सच्चाई यह है कि तीन-चौथ
तो इन पोथियो मे मूर्खता ही भरी पडी है। कहीं-कहीं ज्ञान
बातें अवश्य हैं।"

राहुल जी के भाषण के बाद पण्डितजी को बोलना था।
खड़े हुए और कहने लगे—"मैं पण्डित राहुल जी की इस बा
से सहमत हू कि पुरानी पोथियो मे ज्यादातर बेवकूफी की बा
भरी पडी हैं। मुझे हैरानी है कि हमारे देश में राहुलजी जैसे
चिन्तक विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध क्यो नही हैं। यदि मेरा जैसा
व्यक्ति यह बात कहता कि पुरानी पोथियो मे महज बेवकूफी के
और कुछ नही है तो आप लोगो को बुरा लगता और आप इस
बात को न मानते। आप कहते कि तुम क्या जानते हो पुरानी
पोथियों के मुत्तालिक, मगर आज आपके सामने यही बात एक
ऐसा व्यक्ति कह रहा है जो जिन्दगी भर पुरानी पोथियो में ही
तैरता रहा है।"

की बात चल रही थी। नेहरूजी ने एक मन्त्री जी से पूछा—"आप जाते हैं कभी इस सम्मेलन में ?"

मन्त्री जी ने कहा—"मुझे तो इस बार अध्यक्ष की आफर आई थी।"

वे बोले—"बड़ा सही चुनाव था। आप गये ?"

मन्त्री जी ने कहा—"जाता कैसा ? आपसे पूछा जो नहीं था।"

मन्त्री जी अपना तीर फेंक चुके थे अब पण्डितजी की बारी थी। उन्होंने तुरन्त ही कहा—"क्या आप जितनी भी मूर्खताएं करते हैं मुझसे पूछकर करते हैं ?"

और उस जवाब को सुनने वाले उनकी हाजिर जवाबी के कायल हो गये।

श्री ख्रुश्चेव उन दिनों भारत यात्रा पर आये हुए थे। पण्डित जी उनके साथ घूम रहे थे। बातों-बातों में श्री ख्रुश्चेव ने कहा—"हमारे देश रूस ने एक ऐसा हथियार ईजाद किया है जिसका बटन दबाते ही दुनिया का बहुत बड़ा हिस्सा तबाह हो सकता है।"

उनकी बात सुनकर पण्डितजी ने कहा—"हमारे देश में भी एक ऐसा सम्राट हो गया है। जिसने एक ही युद्ध में लाखों इन्सानों को मौत के घाट उतार दिया था। लेकिन ऐसा करने के बाद इतना पछताया कि भिक्षुक ही हो गया और बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया।"

उनका उत्तर सुनकर श्री ख्रुश्चेव समझ गये कि इस व्यक्ति को बातों से नहीं जीता जा सकता।

राष्ट्रसंघ का पन्द्रहवां अधिवेशन न्यूयार्क में आयोजित हुआ।

पण्डितजी ने उसी शान्त स्वर में कहा—"माई, तू अपने देश के प्रधान मन्त्री को पकड़कर उसे खुले आम गाली दे रही है इससे बड़ी आजादी और क्या चाहती है?"

बुढ़िया बेचारी लज्जित हो गई। लेकिन पण्डितजी ने अपने सेक्रेटरी से कहकर उसके लड़के की खोज करवाई और उसे नौकरी भी दिलवाई। पण्डितजी की पिटारी में हर उम्र, हर किस्म और हर तरह के लोगों के लिए सही मगर नपा-तुला जवाब हुआ करता था।

एक समारोह में अभिनेता मोती लाल उनसे मिले। इधर-उधर की बात होने के बाद पण्डितजी ने उनसे पूछा—"अरे आपका नाम तो मैंने पूछा ही नहीं। क्या नाम है आपका?"

मोती लाल झेंपने लगे। उनका झेंपना देखकर पण्डितजी को अजीब-सा लगा तो उन्होंने फिर पूछा—"हुजूर, मैं आपका नाम पूछ रहा हूं।"

मोती लाल ने हिम्मत करके कहा—"जी मोती लाल।

पण्डितजी मुस्कराकर बोले—"ओ हो मोती लाल। सिर्फ मोती लाल? मोती लाल नेहरू तो नहीं न?"

और सुनने वाले ठहाका मारकर हंस पड़े।

किसी भी स्थिति में किसी भी व्यक्ति के सामने चुप रहना तो इस व्यक्ति ने सीखा ही नहीं था।

साधारण व्यक्ति से हार जाने वाला देश की समस्याओं और अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर कैसे फतेह पा सकता है। मौका, व्यक्ति, वातावरण, विषय सभी को ध्यान में रखकर जवाब देना है और सही जवाब देना है।

एक बार :

नेहरू जी ने अपनी स्वाभाविक सहजता से उत्तर दिया—"भौगोलिक दृष्टि से तो निसन्देह नहीं है, पर आप किस बड़प्पन की बात कर रहे हैं ?"

पत्रकार समझ गये कि इस व्यक्ति को भूमिका के प्रश्नजाल में नहीं फंसाया नहीं जा सकता। अत: एक पत्रकार ने सीधा प्रश्न किया—"मान्यवर, डॉ० कास्ट्रो से मिलने आप हारलेम क्यों गये ? आप उन्हें अपने निवास पर भी तो बुला सकते थे।"

पण्डित नेहरू ने मुस्कराकर कहा—"डॉ० कास्ट्रो एक महान और बहादुर आदमी हैं, मैं उनका सम्मान करता हूं। ऐसे बहादुर आदमी से मिलने के लिए यदि मुझे दिन-भर पैदल चलकर भी जाना पड़े तो मैं अवश्य जाऊंगा। उस व्यक्ति के व्यक्तित्व ने मुझे प्रभावित किया है।"

सभी पत्रकारों को अब चुप तो जाना पड़ा। यह नेहरू जी की महानता ही थी जो दूसरे की महानता को महत्त्व देने में संकोच नहीं कर सकी।

अनेक देशो के अध्यक्ष, प्रधान मन्त्री एव प्रमुख वहा
हुए। प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू भी भारत क
प्रतिनिधित्व करने वहा पहुचे। इसी अधिवेशन मे क्यूबा
नायक और लोकप्रिय नेता डॉ० फिडेल कास्ट्रो भी आ
लेकिन, वे जन-जीवन से दूर हारलेम के एक साधारण से
मे ठहरे थे। कास्ट्रो यद्यपि आयु मे पण्डितजी से छोटे थे त
पण्डितजी के मन में मि० कास्ट्रो के प्रति असीम सम्मान भा
थी। अपने देश क्यूबा के लिए कास्ट्रो महोदय ने अपरिमि
सेवाए की थी। उनके राष्ट्र प्रेम के प्रति ही पण्डितजी इ
प्रभावित थे। उनके मन मे कास्ट्रो महोदय से मिलने की इच्छ
हुई। अत वे एक दिन उनके होटल हारलेम जा पहुचे। दोनो
मित्रो ने देर तक खूब घुल-मिलकर इधर-उधर की बाते की और
समय को आनन्दपूर्वक व्यतीत किया।

न्यूयार्क के पत्रकारो को इस बात की भनक लगी तो वे
पण्डित नेहरू के इर्द-गिर्द जमा हो गये और तरह-तरह के स—
पूछने लगे। कारण कि क्यूबा भारत से छोटा देश है और अ
र्राष्ट्रीय जगत पर कास्ट्रो महोदय की अपेक्षा नेहरू की छ
अधिक गहरी और बडी थी। अमरीकी अखबारो को तो लिख
के लिए मसालेदार खबर मिल गई थी। अत पत्रो मे इस बात
को खूब चर्चा हुई। एक दिन तो कुछ पत्रकारो ने पण्डित नेहरू
ो घेर लिया और तरह-तरह के सवाल पूछने लगे। एक पत्रकार
पूछा— 'हारलेम यहा से बहुत दूर तो नहीं है, आप तो वहां
कर आये है?''

नेहरू जी ने मुस्कराते हुए कहा — 'दूरी के बारे में मुझे नहीं
ूम, मैं पैदल तो गया नहीं था।''
दूसरे पत्रकार ने सवाल दागा—''क्यूबा भारत से बड़ा देश
ही है।''

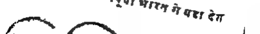

पण्डितजी ने उस जेलर को मुहतोड़ जवाब दिया—"हम मातृभूमि की सेवा करने जरूर आये हैं, लेकिन मातृभूमि को खाने नहीं आये हैं। इस बात को आप अच्छी तरह से समझ लीजिये।"

अंग्रेज जेलर पण्डितजी के दबदबे में आ गया और उस दिन से सभी को अच्छा खाना मिलने लगा। इसी तरह की एक और घटना है जो पण्डितजी के नैतिक साहस को उजागर करती है।

एक दिन कुछ नौजवानों ने आकर उन्हें बताया कि इन्कलाब जिन्दाबाद और महात्मा गांधी की जय बोलने वाले एक युवक को पुलिस पकड़कर थाने ले गई है। यह सुनना था कि पण्डितजी भी थाने की तरफ चल दिये और थानेदार के सामने जा पहुंचे। थानेदार उन्हें देखते ही खड़ा हो गया और बोला—"कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?"

पण्डितजी ने तुरन्त कहा—"इन्कलाब जिन्दाबाद, महात्मा गांधी की जय।"

सुनकर थानेदार खिसयायी-सी हंसी-हंसकर रह गया। वह उनके प्रभाव को जानता था। उसे हंसता देखकर पण्डितजी ने गुस्से से कहा—"मुझे पकड़ा क्यों नहीं? मुझे गिरफ्तार क्यों नहीं करते?"

थानेदार को उनके व्यक्तित्व के सामने कुछ बोलने-करने लायक सूझा नहीं और उसने तुरन्त पकड़े गये युवक को छोड़ दिया।

शक्ति की ही भक्ति होती है। शक्तिहीन को कौन पूछता और पूजता है। शक्ति तो रावण और कंस में भी थी लेकिन उनकी भक्ति कभी नहीं हुई। भक्ति उसी शक्ति की होती है जो कल्याणकारी हो, सृजनात्मक और रचनात्मक हो। जिस शक्ति के साथ

साहस की प्रतिमूर्ति

आगे बढ़ना अच्छा है, पर दूसरे को धक्का देकर नही।

—जवाहरलाल नेहरू

अन्याय के प्रति विरोध की भावना और नैतिकता व्यक्ति को निश्चय ही साहसी बना देती है। ऐसे मे वह इस बात पर तो विचार करता ही नही है कि सम्मुख खड़ा अत्याचारी और अन्यायी कितना शक्तिशाली है। यही गुण पण्डितजी मे भी था। बात उन दिनो की है जब वे स्वतन्त्रता आन्दोलन के सिलसिले मे जेल मे थे। जेल मे जो अंग्रेज जेलर नियुक्त था। वह अत्यन्त ही क्रूर और निर्दयी था। खाने के लिए कैदियो को घास-फूस की मिट्टी मिली रोटिया देता था। राजनैतिक कैदी भी उसकी इस क्रूरता के शिकार थे। एक बार साधारण श्रेणी के कुछ कैदियो ने पण्डितजी को रोटी दिखाते हुए कहा—"देखिये, जानवरो का खाना हम इन्सानो को दिया जा रहा है।"

पण्डितजी ने देखा और स्थिति को समझा तो तुरन्त ही वह टी और साथ मे कैदियो को लेकर जेलर के पास जा पहुँ ले—'देखिये, इन रोटियो मे मिट्टी मिली है भला इसे को सकता है?"

अंग्रेज जेलर ने व्यंग्य से कहा—"तुम लोग यहां मातृभूमि करने आये हो या रोटिया खाने आये हो। इन रोटियो तुम्हारी ही मातृभूमि मे से पैदा हुआ है।"

सारी सभा चीख उठी—'जिन्दाबाद।'

जवाहर का जोहर, जोश, जवानी, जमाल और जादू उनके सिर पर चढ़कर बोलने लगा। सभी शान्त हो गये और पण्डित जी ने अपना भाषण शुरू किया। भीतर नैतिक बल और अदम्य साहस हुए बिना अनजान लोगो मे बीच में ऐसी चुनौती भला कौन दे सकता है?

इसी प्रकार की एक और घटना है स्वतन्त्रता से पूर्व की। पण्डितजी सहारनपुर से देहरादून जा रहे थे। वे कार में थे और उनके साथ कांग्रेस के कुछ और नेतागण भी थे। रास्ते मे जहां-जहां बस्ती आई उन्हे दर्शकों की भारी भीड के बीच से गुजरना पड़ रहा था। अनेक बार तो ऐसे भी हुआ कि कार को रोककर उसी पर खड़े होकर उन्हे भाषण देना पड़ा। वे फिर आगे बढ़ते और कुछ आगे जाने पर दर्शक उन्हें फिर घेर लेते थे। रास्ते में आने वाले ऐसे लोगों को रोकने की पुलिस भरसक कोशिश कर रही थी, लेकिन दर्शक तो आखिर दर्शक हैं। पण्डित जी को देखने और उनकी झलक पाने की लालसा से एक दर्शक सड़क पर आ खड़ा हुआ। तो एक पुलिस वाला अपना डंडा घुमाता हुआ उस पर टूट पड़ा और उसके सिर पर डंडा दे मारा। उस बेचारे को काफी चोट आ गई।

यह सब पण्डितजी ने देख लिया। उनसे न रहा गया। उन्होंने कार को रुकवाया और लपककर उस सिपाही के पास पहुंचकर उसे डांटते हुए बोले—"रुक जाओ। पीछे हटो।"

सिपाही के सामने देश का एक बहुत बड़ा नेता खड़ा था जिसकी सुरक्षा के लिए उसकी ड्यूटी लगाई गई थी। वह सकपका गया। घबराहट में उसने कहा—'जी सरकार।'

पण्डितजी गरज पडे—"कौन हो तुम? किसने तुम्हे सिपाही

पवित्र उद्देश्य और शिव संकल्प हो उसी की भक्ति और पूजा होती है। ऐसी शक्ति और ऐसा साहस भी उसी व्यक्ति में हो सकता है जो भीतर से सर्वथा पूर्ण, निष्पापी और निष्कलंक हो। ऐसा व्यक्ति भयंकर-से-भयंकर परिस्थिति में भी अपना साहस नहीं छोड़ता। पण्डितजी ऐसे ही व्यक्ति थे।

विभाजन से पहले 1946 में पण्डितजी को कराची एक सभा में भाषण करना था। वहां के निवासियों के मन में नेहरू जी के प्रति द्वेष भावना तो वर्तमान थी ही, अतः उन्होंने तय किया कि पण्डित नेहरू को इस सभा में बोलने नहीं देंगे। और उस दिन पण्डितजी जैसे ही बोलने खड़े हुए तो सभी लोग जोर-जोर से शोर मचाने लगे। यह शोर इतना बढ़ गया कि लोगों को नियन्त्रण में लाना मुश्किल हो गया। पण्डितजी यह सब देखकर चुप हो गये और तमाशा देखते रहे और इन्तजार करने लगे कि शायद लोग कुछ समय बाद चुप हो जायेंगे, लेकिन लोग चुप क्यों होने लगे। उन्हें तो शोर ही मचाना था और उस सभा को भंग ही करना था। लोगों का यह रवैया देखकर पण्डितजी आगे से बाहर हो गये और भीड़ को चीरती हुई एक बुलन्द आवाज में बोले—"कायरो, यह क्या ऊधम मचा रखा है तुमने। तुममें से किसी से भी [illegible] मुकाबला करने को तैयार हूं। जो अपने को इस काबिल समझे मंच पर आ जाये।'

और पण्डितजी ने अपने दुश्मनों को [illegible] भी। उनकी चुनौती को सुनकर लोगों को जैसे सांप सूंघ गया। सब चुप। एकदम सन्नाटा। यह नेहरू जिनकी नेतागिरी की ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर छा चुकी थी सामने खड़ा होकर लोगों को चुनौती दे रहा था। किसमें हिम्मत थी इस चुनौती का सामना करता। इतने में भीड़ में से एक आवाज गूंजी—'जवाहरलाल नेहरू ?'

बनाया ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

सिपाही बहुत अधिक घबरा चुका था। वह कुछ जवा
खोजने की उधेड़बुन में लगा हुआ था तब तक तो पण्डितजी फि
उबल पड़े—"उतार दो यह पेटी, तुम सिपाही बनने के काबि
नहीं हो।"

बेचारे सिपाही ने घबराहट में कांपते हुए हाथों से पेटी उतार
और पण्डितजी को देकर हाथ जोड़ दिये। पण्डितजी पेटी लेक
कार में आये और चलने का आदेश दिया। कार चल पड़ी। का
में बैठे उनके मित्र नेतागण भी यह सब माजरा देख रहे थे। कु
दूर आने पर एक साथी ने पूछा—"आपने यह पेटी सिपाही
किस अधिकार के बल पर उतरवा ली ?"

पण्डितजी हैरानी से बोले—"अधिकार ? कैसा अधिकार ?

साथी ने खुलासा किया—"आखिर आप हैं क्या ? इस इला
के कलेक्टर हैं ? एस० पी० हैं ? आई० जी० हैं ? क्या हैं ? कि
अधिकार से आपने पुलिस के एक सिपाही को कहा कि पे

मैं महन्त जी को उठाता हूं।'

महन्त जी डील-डौल में उनसे दुगुने थे, लेकिन पण्डितजी ने उन्हें दोनों हाथों से उठाकर एक ओर धकेल दिया और कार में बैठ कर आगे निकल गये। सच्चाई, ईमानदारी, नैतिकता, लोक-हित आत्मा और मन को बलवान बनाते हैं, साहस पैदा करते हैं। पण्डितजी ऐसे ही बलवान थे।

एक बार पण्डितजी बुन्देलखण्ड कार से जा रहे थे। वह इलाका डाकुओं से आतंकित था। संयोग से उस दिन जंगलों के ठेके की बोलियां पड़ने वाली थी। उस सड़क से बड़े-बड़े ठेकेदार भी आ रहे थे। जंगलों का ठेका लेने के लिए ठेकेदार जब आते तो अपने साथ बड़ी बड़ी रकम लेकर आते थे। उस समय का एक कुख्यात डाकू अपने साथियों के साथ बन्दूकें उठाये हुए उस सड़क पर टोह ले रहा था। उसे किसी मोटे ठेकेदार का इन्तजार था। पण्डित जी की चमचमाती कार उधर से गुजरी तो डाकुओं ने कार को रोक लिया। साथ बैठे सभी स्थानीय नेता सुन्न हो गये, उनके शरीर का जैसे खून ही जम गया। सभी समझ गये कि कार के सामने जो लोग बन्दूक लिए खड़े हैं वे डाकू हैं। लेकिन पण्डितजी के चेहरे पर घबराहट और भय की एक लकीर भी नहीं उभरी, उल्टे वे तमतमा गये और जल्दी से कार का दरवाजा खोलकर उनके सामने आ खड़े हुए और कड़ककर बोले—'मैं जवाहर लाल हूं, क्या चाहते हो बोलो?'

देश का तो बच्चा-बच्चा इस नाम और शक्ल से वाकिफ था। उन डाकुओं ने जब उन्हें देखा और नाम सुना तो उनकी नानी ही मर गयी। किसी से कुछ बोलते ही नहीं बना। एक-दूसरे की शक्ल देखने लगे। पंडित जी फिर भड़के—'बोलते क्यों नहीं, क्या चाहते हो?'

डाकू सरदार ने अंटी से पांच सौ रुपयों के नोट उनकी ओर

मुड़ कर कहा — 'आपको इस ओर देखा चाहते हैं।'

पंडित जी ने ऊपर हाथ से चलाने और बोले—'बढ़िये!'

वे चलता कार से आ बैठे और कार दौड़ चली। डाकू पीछे-मुड़ कर भागी हुई कार को देखते रहे। कार सड़क पर दौड़ने लगी आ रही थी और पंडितजी ऐसे बैठे थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। उनको इस मूड में देखकर साथियों ने समझा कि पंडितजी को पता ही नहीं चला कि वे लोग डाकू थे। कार में बैठे एक साथी ने कहा - 'वे लोग डाकू थे।'

वे बोले — तो हुआ क्या। मैंने डाकुओं को भी मुंह लगाया है। उनसे क्या डर? कहकर वे हंसने लगे।

साथी जिन डाकुओं को देखकर डर गये थे वही डाकू पंडितजी को देखकर सहम गये। यह साहस का चमत्कार ही तो था।

डाकू, गुंडे और दंगाई लोगों से भय की तो बात ही क्या वे तो साक्षात मृत्यु से भी नहीं डरते थे। मृत्यु सामने खड़ी हो तभी व्यक्ति के चरित्र की सही पहचान होती है। लेकिन उनके जीवन में एक समय ऐसा भी आया जबकि मृत्यु ने उनके सामने आकर उनका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए चरचराहट की, सिसकारी मारी, लेकिन उन्होंने मृत्यु को देखकर ऐसे मुंह कर लिया जैसे किसी चिड़िया के बच्चे को देखा हो। कश्मीर के मसले पर राष्ट्रसंघ में श्री कृष्ण मेनन की तकरीर को वे विमान में बैठे हुए पढ़ रहे थे। एकाएक विमान का इंजन बिगड़ गया। सभी यात्री इधर-उधर भागने लगे। मौत मुंह बाये सबकी ओर बढ़ र थी। पंडित जी ने देखा और समझा फिर सभी से कहने लगे- 'आप लोग इस तरह घबराहट पैदा करके चालकों को भी नर्व कर देंगे। बैठ जाइये अपनी-अपनी जगह पर।'

फिर वे चालकों के पास आये और बोले—'करिये जो कु आप कर सकते हैं। मगर शान्ति के साथ, घबराने की को

जरूरत नहीं है।'

इतना कहकर वे अपनी जगह आकर बैठ गये और फिर से अखबार पढ़ने लगे। मौत ने इस विकट जीव को देखा तो अपना सिर पीट लिया। जो उससे डरता ही नहीं, वह उससे मरेगा कैसे। मौत अपना सिर धुनती हुई वहां से चली गई। चालकों ने जैसे-तैसे विमान को एक मैदान में उतार लिया। इस प्रकार सभी के प्राणों की रक्षा हुई।

निश्चलता और निर्भयता तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। मृत्यु का भय उन्हें कभी व्यापा नहीं। मृत्यु की ओर देखकर तो वे सदा हंसते थे।

अष्टग्रह के समय भारत में ही नहीं सारे विश्व में हाहाकार मच गया था। सुरक्षा की दृष्टि से व्यक्तिक और राष्ट्रीय स्तर पर जिससे जो कुछ भी बन सकता था उसने वह किया। सम्पूर्णानन्द जी ने उस समय पण्डितजी से कहा—"आप कुछ दिनों तक हवाई यात्रा न करें तो अच्छा है।"

उनकी बात सुनकर पण्डितजी बोले—"ऐसी भी क्या बात है कि हम सितारों से डरने लगें। और मान लो कोई अनिष्ट आ ही गया तो हम हिम्मत से उसका मुकाबला करेंगे।"

ऐसे निर्भय, निडर और साहसी के मानस में बसकर तो साहस भी अपने आप पर इतराया होगा।

प्यारों के प्यारे

व्यक्ति किसी भी जाति और समाज का हो, किसी भी ध
व स्तर का हो उसका कोई-न-कोई अंतरंग मित्र अवश्य होना
जिससे वह अपने सुख-दुख की बातें करता है, कच्ची-पक्
चुहलें करता है, लड़ता-झगड़ता है और मान-मनौवल करता है
पण्डितजी के जीवन में भी उनका एक ऐसा मित्र था जिसके सा
वे प्यार करते थे, लड़ते-झगड़ते थे। यहां तक कि गाली-गलौ
से लेकर थप्पड़-मुक्कों तक की बातें होती थीं। उनके मन्त्रि मंड
के बाहर के और आम लोग नहीं जानते थे कि श्री महावीर
त्यागी उनके ऐसे ही मित्रों में से थे। बचपन की दोस्ती जवानी
के मोड़ से होती हुई बुढ़ापे तक साथ चलती रही। दोस्ती भी
ऐसी कि एक को चोट लगती तो दर्द दूसरे को होता। महान
नेता हुए तो क्या हुआ और प्रधान मन्त्री हुए तो क्या, आखिर
थे तो वे भी इंसान ही। दोस्ती और प्यार के रंग से अछूते कैसे
रह सकते थे।

1930 में लखनऊ में उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक
हो रही थी। पण्डितजी उस सभा के सभापति थे। इस सभा में
श्री महावीर त्यागी ने बहस-बन्दी का प्रस्ताव पेश किया तो
पण्डितजी ने उसे अस्वीकृत कर दिया। यह बात त्यागी जी को
अच्छी नहीं लगी। क्योंकि कायदे से प्रस्ताव को बैठक में रखकर
उस पर बहस करके निर्णय लिया जाना चाहिए था, जबकि

पण्डितजी ने प्रस्ताव को अस्वीकृत ही कर दिया था। त्यागी जी उठे और उन्होंने नेहरू जी को विधान की वह पुस्तक दिखाई जिसमें प्रस्ताव को सभा में रखा जा सकता था।

पण्डितजी उनकी इस हरकत से उखड़ गये और गुस्से से बोले—जाकर अपनी जगह पर बैठो, वरना मीटिंग से निकाल दूंगा। कहते हुए विधान की पुस्तक फेंक दी।

त्यागी जी ने उनके इस व्यवहार पर आपत्ति उठाई और सभा का ध्यान आकर्षित किया। इस पर पण्डितजी सभापति के आसन से उठकर एक ओर बैठ गये तथा श्री पुरुषोत्तम दास टंडन को सभापति के आसन पर बैठा दिया। इस पर भी त्यागी जी शान्त नहीं हुए और उन्होंने नये सभापति से कहा—"आपसे पहले जो महाशय सभापति के स्थान पर बैठे थे उन्होंने विधान की पुस्तक फेंककर जो अशोभनीय व्यवहार किया है, उससे सभा और सभापति की गरिमा को धक्का लगा है। अतः उनसे कहा जाये कि सभा से माफी मांगें।"

पण्डितजी यह सुनकर फिर भड़क उठे—"आप मुझे किताब दिखाते हैं। सभा संचालन का सबक सिखाते हैं। मेरे हाथ में किताब थी अगर और कोई भारी चीज होती तो मैं उसे दे मारता।

त्यागी जी से अब तो नहीं रहा गया। उन्होंने भी उफनते हुए कह दिया—"आप भारी चीज दे मारते तो मैं वह थप्पड़ देता कि मुंह लाल हो जाता।"

इस बात को लेकर तो सभा में हो-हल्ला मच गया। सभी चिल्लाने लगे—"अपने शब्द वापस लो। बैठ जाओ। माफी मांगो।" त्यागी जी भी भन्नाकर बोले—"जब तक ये इलाहाबादी कुत्ते जो मुझ पर छोड़ दिये गये हैं, चुप नहीं किये जाएंगे, मैं नहीं ... कहने से त्यागी जी ने थप्पड़ वाले शब्द

तो वापस ले लिये, लेकिन जब तक अपमान का फैसला न हो जाये उन्होने बैठने से इन्कार कर दिया।

अब तक पण्डितजी का गुस्सा ठंडा हो चुका था। वे अपने स्थान से उठे और सभा को सम्बोधित करके बोले—"त्यागी जी और मैं बहुत पुराने दोस्त हैं, साथ ही हम दोनो एक दूसरे से ज्यादा तेज मिजाज भी हैं। हम दोनों में से न तो कोई माफी मांग सकता है न माफी दे सकता है। आप हमे हमारे हाल पर छोड़ दें। बाहर जाकर हमलोग अपना झगडा खुद ही निपटा लेंगे। हां, हम दोनो की वजह से सभा का बहुत-सा वक्त बरबाद हुआ है इसलिए मैं दोनो की तरफ से सभा से माफी मांगता हू।"

फिर उन्होने त्यागी जी की तरफ देखकर कहा—"त्यागी जी, अब तुम मेरी बात का समर्थन करो।"

समर्थन मे त्यागी जी मुह फुलाये हुए अपने स्थान पर आकर बैठ गये।

इस घटना के लगभग छ साल बाद ही एक और अवसर आया दोनो मे झगडा होने का। उत्तर प्रदेश विधान सभा के चुनाव होने वाले थे और कांग्रेस यह चुनाव जीतने की भरसक कोशिश कर रही थी। उस समय त्यागी जी को मेरठ क्षेत्र का कमिश्नर नियुक्त किया गया। वहां उन्होने एक के बाद एक कई जलसे कर डाले। यह देखकर वहां के एक ताल्लुकेदार घबरा गये। उन्हें भी वहां से चुनाव लड़ना था। अब वे त्यागी जी से मिले और त्यागी जी को पटाकर उन्होने तय करवा लिया कि कांग्रेस उनके क्षेत्र मे चुनाव नही लडेगी। इस सौदे के लिए उन्होंने त्यागी जी को बीस हजार रुपये दिये। त्यागी जी ने बाद मे उनसे तीन हजार रुपये और ले लिये। इस प्रकार तेईस हजार रुपयों मे वह सौदा तय कर लिया। और वह पूरा का पूरा रुपया कांग्रेस मे जमा कर दिया। धन की कमी उस वक्त थी और त्यागी जी के

धन की इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया था। पर पण्डितजी को इन सभी बातों की खबर नहीं थी। उधर ताल्लुकदार साहब बेफिक्र थे कि अब कांग्रेस उनके क्षेत्र में अपना उम्मीदवार खड़ा नहीं करेगी। लेकिन समय पर वहां से कांग्रेस का उम्मीदवार खड़ा हुआ तो वे बौखला गये और उन्होंने कांग्रेस बोर्ड को एक पत्र लिखकर सारे सौदेबाजी की बात लिखी। साथ ही उन्होंने अपना रुपया वापस करने की बात भी लिख दी।

जिस दिन बोर्ड की बैठक थी, पण्डितजी गुस्से में लाल-पीले होते हुए बैठक में आये और रफी अहमद किदवई से बोले—"रफी, मेहरबानी करके त्यागी को कमरे से बाहर निकाल दीजिये। जिस मीटिंग में ये बैठेंगे मैं उसमें नहीं बैठ सकता।"

बोर्ड की यह बैठक इलाहाबाद आनन्द भवन में ही हो रही थी। त्यागी जी ने जो कुछ किया था, कांग्रेस के लिए धन जमा करने के लिए किया था। पार्टी के हित में ही किया था। अतः उनके मन किसी प्रकार का बोझ नहीं था। उन्होंने पण्डितजी का मुंह चिढ़ाते हुए कहा—"अभी भाग पी रखी है। रफी साहब जरा इनसे कहिये कि मीटिंग से वापस चले जायें। एक तो पन्द्रह मिनट देर से आये हैं और ऊपर से मिजाज।"

सभी लोगों को हंसी आ गयी। लेकिन पण्डितजी पर कोई असर नहीं हुआ। वे दमदमाते हुए बोले—"अभी आपको मजा चखाता हूं।"

उन्होंने ताल्लुकेदार साहब का पत्र रफी साहब के हाथों में थमाते हुए कहा—"हजरत कांग्रेस के झण्डे बेचते फिरते हैं।"

त्यागी जी चुपचाप बैठे और मन-ही-मन हंसते हुए तमाशा देख रहे थे। पण्डितजी ने उनसे पूछा—"कहिए जनाब, आप ताल्लुकेदार से रुपया लाये थे?"

त्यागी जी ने स्वीकार किया—"जी हां लाया था।"

पण्डितजी ने कड़ककर पूछा—"कहा गया वह रुपया ?"

उन्हें तो मालूम नहीं था कि रुपया कांग्रेस में जमा कर दिया गया है। इसलिए त्यागी जी को चुहल सूझी बोले—"क्या बताऊं, बहुत शर्मिन्दा हूं। बरसों से अपनी जायदाद बेचकर रखी थी, कर्ज बहुत चढ़ गया था। इधर मेरी बीवी भी चुनाव लड़ रही है। कड़की चल रही थी तो वह रुपया मैंने अपने कर्जदार को दे दिया। वक्त आने पर धीरे-धीरे मैं सारा कर्ज चुका दूंगा।"

संसदीय बोर्ड के सामने इतना कहना था कि सभी सदस्य उनके खिलाफ हो गये और सभी ने एकमत होकर उन्हें कमरे से बाहर निकाल दिया। त्यागी जी फिर भी कुछ नहीं बोले और चुपचाप आकर उस बेंच पर बैठ गये जिस पर कभी मोतीलाल जी बैठा करते थे। मीटिंग भीतर चलती रही। इस बीच पार्टी के कैशियर से सभी को मालूम हुआ कि रुपया तो वे कभी का जमा करा चुके हैं पार्टी के नाम पर। सच्चाई मालूम हुई तो त्यागी जी के इस अनोखे व्यवहार पर हंसते हुए पण्डित जी ने केशव देव मालवीय जी को भेजा ताकि चाय पीने के लिए त्यागी जी को बुला लायें।

मालवीय जी जब उन्हें बुलाने आये तो त्यागी जी ने कह दिया—"उनके हिस्से में आनन्द भवन की जितनी चाय बदी थी वे भाई जी (मोती लाल जी) के वक्त में पी चुके। घाड़े मर गये गधों का राज्य आ गया है। जिनको उन दिनों चाय नहीं मिली पी वे अपने हिस्से की पियें। मेरा तो अब आनन्द भवन से आबदाना उठ गया है।"

भीतर जाकर केशव जी ने बात दोहरा दी। सभी को हंसी आ गई, मगर माता स्वरूप रानी से न रहा गया। उन्होंने विजय लक्ष्मी जी को भेजा कि वे त्यागी जी को बुला लायें। माता स्वरूप रानी की बात टालने की हिम्मत तो त्यागी जी [illegible] नहीं थी।

वे आये। प्यालों में सभी को चाय दी जा रही थी। माता स्वरूप रानी ने त्यागी जी के लिए खुद अपने हाथ मे चाय बनाई इस पर पण्डितजी मुस्कराते हुए बोले—"प्याले से क्या होगा अम्मा, बाल्टी मंगाओ। देखती नही हो, घोडे आ गये।"

और कमरे में हसी का एक झरना फूटा जिसमे सारे गिले शिकवे, गुस्सा और गर्मी वह निकले।

देश आजाद होने के बाद नेहरू मन्त्रिमडल में त्यागी जी रेवेन्यू मिनिस्टर थे। एक दिन वे केबिनेट मे देर से पहुचे तो पण्डितजी ने उनसे कहा—"मन्त्री होते हुए भी तुम समय की पाबन्दी नही समझते ?"

जवाब में त्यागी जी ने कहा—"जरा अपने होम मिनिस्टर डॉ० काटजू से पूछो। एक दिन उन्होंने मेरी जेब से घडी निकाल कर अपनी जेब में रख ली और बिना लौटाये चले गये। मैं अब बिना घडी के रह गया हूं, फिर मैं समय की पाबन्दी कैसे करू ?"

उनकी बात सुनकर पण्डितजी ने कहा—"अच्छी बात है मैं तुम्हे एक घडी दूगा।"

इस बात को दो महीने के लगभग बीत गये, पर घडी नही मिली। एक दिन राष्ट्रपति भवन मे एक चाय पार्टी थी। सभी उपस्थित थे। काफी भीड थी। त्यागी जी पण्डितजी के पास आये और उनका हाथ पकडकर कहा—"जरा राजेन्द्र बाबू तक चलो।"

दोनो राष्ट्रपति के पास जा पहुचे। उनके पास पहुचकर गी जी हाथ जोडकर बोले—"राष्ट्रपति जी, एक दावा दमा महावीर त्यागी बनाम पण्डित जवाहर लाल वल्द डत मोती लाल नेहरू आपकी अदालत मे पेश है।"

पण्डितजी मुस्कराकर बोले—"मुकदमे से पहले आपस में म्झौता नही हो सकता ?"

पर बात करनी है। यह मैडम तो भूतनी की तरह तुम्हारे सिर पर सवार हो गई है।"

त्यागी जो बात सुनकर वहा उपस्थित टडनजो, आचार्य नरेन्द्रदेव, बाल कृष्ण शर्मा और पन्त जी खूब जोर से हस पडे थे, मगर पण्डितजी लजा गए थे।

उन्ही पिछली बातो को याद करते हुए और घडी लेते हुए त्यागी जी ने कहा—"जब वह मैडम तुम्हारे मन से उतर गई तो अब उसकी घडी मेरे हिस्से मे आ गई।"

होली मे कुछ हद तक शरारत करने की छूट होती है और किसी बात का बुरा नहीं माना जाता। होली का दिन था। पण्डितजी को तो होली खेलने का शौक रहा है। उस दिन त्यागी जी भी होली खेलने उनके निवास स्थान पर पहुचे। केबिनेट के सभी मन्त्री और नेता होली खेलने आये थे। सारे मन्त्री बारी-बारी से पण्डितजी के मुह पर लाल, पीला, हरा रग मलकर गले मिल रहे थे। पन्त जी की बारी के बाद त्यागी जी की बारी आई। रग लगाने के बाद पण्डितजी से गले मिलते हुए उन्होंने उनके गालों पर एक लम्बा-सा चुम्बन ले लिया। प्रधानमन्त्री का गाल चूमना मतलब शेर के मुह मे सिर रखना। सभी सहम गए। पण्डितजी ने रूमाल से रग पोछते हुए कहा—"यह क्या बदतमीजी है? मुह जूठा कर दिया।"

त्यागी जी होली की मस्ती मे बोले—"माफ कीजिये, कश्मीरी गाल हिन्दुस्तान मे इसी काम में आते हैं।"

उन्हे प्रधान मन्त्री समझकर उनके साथ होली खेलने और इस तरह चुम्बन लेने की हिम्मत तो सामान्य व्यक्ति के वश की बात नही हो सकती। लेकिन सम्बन्ध दोस्ताना हो, जिगरी याराना हो तो फिर सभी कुछ सम्भव है।

1962 के मन्त्रि मंडल मे त्यागी जी शामिल नहीं हो सके।

ण्डितजी ने उन्हें आफर दी, लेकिन त्यागी जी पार्टी के काम में ज्यादा दिलचस्पी ले रहे थे। वे पार्टी के 'डाक्टिन' थे। अतः मन्त्री बनने की आफर टालते रहे। पण्डितजी ने उन्हें फिर बुलाया और मन्त्री बनने की आफर दी। इस पर त्यागी जी ने कहा—"अब इस वजारत में मजा नहीं रहा जवाहर लाल। याद है वे दिन जब नैनी जेल में तुम मुझे फ्रेंच पढ़ाया करते थे और जब मैं सही उच्चारण नहीं कर पाता था तब तुम मुझे उल्लू, गधा, बेवकूफ, नालायक और न जाने क्या-क्या कहा करते थे। इसके बाद जब मैं तुम्हारा मन्त्री बन गया तब तुमने मुझे नालायक और बेवकूफ कहना बन्द नहीं किया। वे मजे के दिन थे मजे की बातें थीं। मगर अब इधर कुछ दिनों से तुम मुझे आप और जनाब कह कर बुलाने लगे हो। तुम्हारे इस आप और जनाब में वह जोश, वह मजा और वह बात नहीं जो नालायक, गधा और बेवकूफ में थी। जब मुझे मजा नहीं तो मैं तुम्हारा वजीर क्यों बनूं?"

उन दिनों पण्डितजी अवस्थ थे। सहारा लेकर बैठते थे। मन्द-मन्द स्वर में उन्होंने कहा—"भई महावीर, अंग्रेजी में एक कहावत है कि जो बात सच हो उसका मजाक नहीं बनाना चाहिए इसलिए मैंने अब तुम्हें उल्लू और गधा कहना छोड़ दिया है।"

सुनने वाले ठहाका मारकर हंस पड़े और फिर त्यागी जी मन्त्रि मंडल में शामिल हो गये।

लेकिन मन्त्रि मंडल में आने से पहले एक दिन और पण्डितजी ने उन्हें अपने यहां बुलाया और कहा—"पूर्वी बंगाल में शरणार्थियों की समस्या जटिल होती जा रही है। बेहतर हो तुम मन्त्रि मंडल में आ जाओ।"

लेकिन त्यागी जी ने कहा—"जी नहीं मेरे नाती ने कहा है कि जब सभी अच्छे लोगों ने कामराज प्लान में मिनिस्टरी छोड़ दी है तो तुम्हारे लिए मिनिस्टरी लेना ठीक नहीं है। पापा नाम्दे

मिनिस्टरी दें तो भी मत लेना।"

पण्डितजी नाती का सदर्भ सुनकर खूब हसे और कहने लगे—"तो तुम मेरी बात मानोगे या उस बच्चे की ? त्यागी जी ने मीठे गुस्से से कहा—"जवाहर लाल जी बीमारी के कारण तुम्हारा दिमाग कमजोर पड़ गया है क्या ? अच्छा खासा पार्टी का काम चला रहा हू। क्या तुम्हारी कैबिनेट पार्टी से ज्यादा महत्त्व रखती है। लोग भला मुझे क्या कहेंगे ?"

तंग आकर पण्डितजी ने कहा—"लोग यही कहेंगे कि लम्बी-चौड़ी बातें करने वाले इम्तिहान के वक्त पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए।"

ऐसी थी दोनों की यारी और प्यार। आज लोक सभा तक पहुचने के लिए नेता लोग एड़ी-चोटी का जोर लगा देते हैं। लोक-में पहुच गये तो मन्त्री बनने के लिए सयानों, सन्तों और कों के चक्कर लगाते फिरते हैं, लेकिन एक त्यागी जी थे जो ी बनने के लिए तैयार ही नहीं थे और एक पण्डितजी थे स कर्मठ, ईमानदार और देशभक्त व्यक्ति को मन्त्री बनाने तुले हुए थे। कहा मिलते हैं ऐसे उदाहरण ?

पण्डितजी उन दिनों काफी अस्वस्थ रहने लगे थे, लेकिन इतने भी अपना काम पूरा किया करते थे। प्रायः बैठकें उनके घर ही होने लगी थी। उस दिन भी कांग्रेस पार्लियामेंट की बैठक के घर पर हो रही थी। बीमारी के कारण पण्डितजी कम बोल थे। यह देखकर दूसरे सभी सदस्य भी मौन ही रहे। सभी मौन पण्डितजी की तबियत पर बुरा असर न डाले, यह समझ-र त्यागी जी उनके बिल्कुल पास जाकर बैठे और उनकी जेब बाल पेन निकालकर अपनी जेब मे लगा लिया। यह देखकर ण्डितजी ने कहा—"यह क्या ?"

त्यागी जी ने विनोद मे कहा—"जेब काटने का अभ्यास कर

रहा हूं।"

पण्डितजी ने कहा—"तुम इस आर्ट में कभी कामयाब नहीं हो सकते। जेब ऐसे काटनी चाहिए कि किसी को पता तक न चले। तुम तो डकैती के लायक हो।"

अब त्यागी जी असली बात पर आये और बोले—"पार्टी की राय है कि अब आपको ज्यादा काम नहीं करना चाहिए। जब तक आपके पास कलम रहेगी आप आराम नहीं करेंगे।"

पण्डितजी ने पीछा छुडाने के लिए कहा—"अच्छा भई लड़ते क्यों हो, रख लो यह पेन।"

त्यागी जी ने पेन उलट-पुलटकर देखा और कहने लगे—"शर्म नहीं आती आपको ? भारत के प्रधान मन्त्री होकर यह चवन्नी वाला पेन रखते हो ?"

पण्डितजी ने जवाब दिया—"कांग्रेस के सभी सदस्य भी तो चवन्नी वाले होते हैं।"

त्यागी जी ने प्रयत्न किया, उन्हें आराम करने के लिए तैयार कर लें, मगर सब बेकार। आराम-हराम का नारा लगाने वाले ने अपने सबसे प्यारे दोस्त की बात भी नहीं मानी।

विश्व में अनेक ऐसे नेता और प्रधान मन्त्री हुए हैं जो अपने देश तथा विदेश में बहुत प्रसिद्ध रहे लेकिन पण्डित नेहरू की बात ही कुछ निराली थी। उन्होंने एक एक बार इस बात को माना था कि भारतीय जनता का जो स्नेह और प्यार उन्हें मिला है वह कम लोगों को मिला होगा।

विभाजन आन्दोलन के समय की बात है। देश अभी आजाद तो हुआ नहीं था, लेकिन पण्डितजी को देश का बच्चा-बच्चा जान चुका था। श्री महावीर त्यागी उन दिनों कांग्रेस कमेटी के मन्त्री थे। अतः चन्दा जमा करने का काम उनके ही ऊपर था। लेकिन उन दिनों चन्दा मुश्किल से ही कोई देता था। इस बारे में बात करते हुए एक दिन त्यागी जी ने उनसे कहा—"अब चन्दा तो कोई देता ही नहीं है।"

इसपर नेहरू जी ने कहा—"लोग पैसे ऐसे नहीं देते तो पार्टी के खातिर भीख मांगो।"

त्यागी जी सकुचाते हुए कहने लगे—"लो, बोलो भीख कैसे मांगें?"

पण्डितजी ने कहा—"पार्टी के लिए सब कुछ करना पड़ता है। तुम्हें भीख मांगने में अगर शर्म आती है तो मैं तुम्हें बताता हूँ कि भीख कैसे मांगी जाती है।" और उन्होंने बाजार में एक दुकान के सामने खड़े होकर अपना कुर्ता फैला दिया। अपने देश के महान नेता को इस तरह भीख मांगते देखकर लोग खुद शरमाने लगे और उस कुर्ते में रुपये, पैसे, नोटों की बरसात होने लगी। बहुत ही कम समय में हजारों रुपये जमा हो गये। पण्डित-जी ने सारी रकम त्यागी जी को देते हुए कहा—"देखा आपने ऐसे मांगी जाती है भीख। देने वालों ने दिये या नहीं?"

इसपर त्यागी जी ने कहा—"माफ करना, आपने भीख नहीं मांगी बल्कि जनता ने आपको अपना प्यार, सम्मान और दुलार

दिया है। मुझे तो वह सब हासिल नहीं है जो तुम्हें है। लोग तो शायद तुम्हें लाखों रुपये भी दे दें, लेकिन मुझे तो दस रुपल्ली भी बड़ी मुश्किल से मिलेगी।"

यह घटना उस महान नेता कि जन-प्रियता को उजागर करती है। आजादी से पहले भी लोगों के दिलों में उनके लिए कितना आदर और मान था।

बिहार के नगरनोमा में 1946 में काफी लोग सैनिकों की गोलियों से मार डाले गये। इससे बिहार के लोगों में उत्तेजना फैल गई। वे सारा दोष आन्दोलनकारी नेताओं को देने लगे। तभी पण्डितजी एक सभा में भाषण देने पटना पहुंचे। लोग तो उत्तेजित थे। उन्होंने पण्डितजी का कुर्ता फाड़ डाला और उनकी टोपी उड़ा ली। ऐसे में वहां के प्रिय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने भीड़ पर काबू किया और उन्हें डांटते हुए कहा—"आपने पण्डितजी को अपमानित करके अपने आपको अपमानित किया है।"

जय प्रकाश बाबू की यह बात सुनकर पण्डितजी ने उन्हें पीछे खींच लिया और खुद माईक पर आकर बोलने लगे—"नहीं साहब, मैं बड़ा ही बेहया आदमी हूं। मेरी हत्तक-इज्जती जरा भी नहीं हुई है। उल्टे मैं आप सभी से खुश हू कि आपने मेरा स्वागत बड़े जोश के साथ किया और अपने मन के गुस्से को निकाला। आपके ढेर सारे साथी जो मेरे भी भाई थे मारे गए हैं, ऐसे में गुस्सा तो आना ही चाहिए।"

अगले ही दिन पण्डितजी नगरनोमा गए और वहां भी उत्तेजित भीड़ के सामने घण्टे भर तक भाषण दिया। उनके चले जाने के बाद कई लोगों के मुंह से सुना गया—"हमारे साथी तो मारे गये, लेकिन इस बहाने एक बार हमारी धरती पर पण्डितजी के पवित्र चरण तो पड़े, उनके दर्शन तो हुए। ऐसे महापुरुष के

दर्शन धन्य-धन्य होते हैं।"

यह था उस महान नेता के प्रति जनता का दुलार। जनता के हित के लिए वे अपने पद, सुख और मान-सम्मान को भी दाव पर लगाने के लिए सदा तैयार रहे।

एक बार वे ट्रेन से दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे पांडिचेरी स्टेशन पर ट्रेन रुकी। वहा उनके स्वागत की भव्य तैयारियां थी। नेहरू जी जिन्दाबाद के नारों से आसमान धरती पर झुका आ रहा था, लेकिन पण्डितजी ने प्लेटफार्म पर देखा कि चारों ओर सुरक्षा पुलिस के आदमी ही दिखाई दे रहे हैं। फिर ये आवाजे कहा से आ रही हैं। मालूम करने पर बताया गया कि सुरक्षा की दृष्टि से जनता को प्लेटफार्म के बाहर ही रोक दिया गया है। जनता बाहर से ही जय-जयकार के नारे लगा रही थी। जनता को उनके पास आने से रोक दिया गया। वह जनता जिसने उन्हें जनप्रिय और जन-नायक बनाया उन तक नही आ सकती। जिस जमीन पर वे खडे है वह जमीन पांव के नीचे से हटा दी गई है। तब वे सुरक्षा पुलिस पर बरस पड़े—"मैं पुलिस वालों को देखना पसन्द नही करता। मुझे मेरी जनता चाहिए और वह कहा हैं?"

कहते हुए वे प्लेटफार्म के बाहर जाने लगे, लेकिन तब तक प्लेटफार्म से सुरक्षा का घेरा उठा लिया गया और अब जनता अपने प्रिय नेता से मिल रही थी और नेता अपनी प्रिय जनता से मिल रहे थे।

पण्डितजी की जनप्रियता का एक और उदाहरण बडा ही अद्भुत है। एक बार रोहतक जिले के एक गांव में वहा के जाटों ने मिलकर एक बहुत ही खूबसूरत चारपाई तैयार की। अच्छी लकडी, पायों पर रंगीन पालिश तथा अपने हाथों से कते सूत की डोरियों से उसे बुना। चारपाई इतनी खूबसूरत बनी कि उनका

मन उसे बेचने का न हुआ। तो फिर उसका क्या करें, तय हुआ कि किसी बड़े आदमी को वह भेंट की जाये। अब बड़े आदमी की तलाश होने लगी। गाव के पटवारी से लेकर जिले के विधायक तक पर विचार किया गया, लेकिन किसी को भी तसल्ली नहीं हुई। एक जाट ने सुझाव दिया कि इसे प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू को भेंट दे दी जाये। सुझाव सभी को अच्छा लगा और सभी एकमत से तैयार हो गये, लेकिन प्रश्न था कि उन तक चारपाई को पहुंचाया कैसे जाये। एक साहसी और दबग जाट इसका जिम्मा अपने ऊपर लिया।

जाट चारपाई लेकर दिल्ली पहुचा और फिर प्रधान मन्त्री के वास स्थान पर आ लगा। लेकिन उसे वहा किसी ने घुसने नही या। वह दो दिन तक चारपाई लेकर उनके निवास स्थान के हर पड़ा रहा। उसने पहरेदारों को समझाने की कोशिश की, यह वह चारपाई है जिसे हम गाव वाले सिवाय प्रधान मन्त्री और किसी को नही दे सकते और वह इसी काम से दिल्ली या है, लेकिन उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सरे दिन जब पण्डितजी कार से उधर से निकलने वाले थे तो स जाट ने चारपाई बीच रास्ते मे आड़ी खड़ी कर दी। कार ाई, पर रास्ता रुका देखकर पण्डितजी ने उसका कारण पूछा तो स जाट ने सारा किस्सा कह सुनाया। पण्डितजी उसे और ारपाई को लेकर वापस भीतर गए और जाट की बहुत ही ातिर की। चारपाई को उपहार वाले कमरे मे रखवा दिया या। पण्डितजी देर तक उससे बातें करते रहे। जाट ने विदा ते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"पण्डितजी साहब, मुझे सीद चाहिए कि यह चारपाई आपको मिल गई है नही तो मेरे ांव वाले समझेंगे कि मैंने उसे बेच दिया है।"

पण्डितजी ने तुरन्त ही अपने एक बड़े से फोटो के पीछे लिखा

कि मुझे चारपाई मिल गई है और उस पर अपने हस्ताक्षर किये

पहरेदारो और सुरक्षा अधिकारियो ने उस खाट और उ खाट की कद्र नही की, लेकिन जिसके खातिर वे पहरा लगा रं थे उसने खाट को भी स्वीकारा और खाट को भी सिर आखो प बैठाया। बड़े आदमियो की बातें ही बडी होती हैं। मगर पह उनकी बाते बडी होती हैं और आगे चलकर उनकी ये बडी बा ही उन्हे बडा आदमी बना देती हैं।

बड़े आदमी और उसके बड़प्पन की सबसे बड़ी पहचान य है कि वह इस अहसास से कोसो दूर होता है कि यह बड़ा है जबलपुर के शहीद स्मारक का उद्घाटन करने पण्डितजी वह आये थे। बाद में वे स्वतन्त्रता सेनानियो को ताम्रपत्र दे रहे थे सभी लोग अपनी-अपनी बारी से आते झुककर उन्हे प्रणाम करते। लेकिन एक शहीद की वृद्धा माता जब उनके सामने आ तो वह प्यार और दुलार मे यह भूल ही गई कि ताम्रपत्र देश के प्रधान मन्त्री से ले रही है। उसका दुलार झलक उठा। उसने झुककर प्रणाम करने के बजाय उनकी कमर थप-थपाकर जैसे शाबासी और आशीर्वाद दे दिया। वृद्धा ने तो भूल की सो की लेकिन पण्डितजी भी भूल गये कि वे प्रधान मन्त्री हैं और देश के के बडे नेता है। वृद्धा का हाथ कमर की तरफ बढ़ा तो उन्होंने भी अपनी पीठ झुका दी और उसके सामने झुककर आशीर्वाद लिया। देखने वालो को ऐसा लगा कि जैसे वह वहा केवल भाषण देने नही आये है, कुछ लेने भी आये है—एक माता का दुलार भरा आशीर्वाद।

पण्डितजी को यह बात पसन्द नही थी कि उनकी जनता और उनके बीच कोई अवरोध बनकर आड़े आये और वे जनता से मिलने वाले प्यार मे महरूम रह जायें। वे एक बार विश्राम करके [illegible] रहे थे। रास्ते में [illegible] गांव में उनके दर्शन करने

चिन्ता अलग। सरकारी जिम्मेदारी का बोझ। ऊपर से ये छोटे-मोटे सामाजिक और सांस्कृतिक काम भी। इतना बोझ सिर पर आने से कोई भी व्यक्ति अपने से स्थान थोड़ा-बहुत हिल-डुल तो जाता ही है। लेकिन दुख की बात तो तब होनी चाहिए जब वह अपने मूल को छोड़ दे। पर पण्डितजी तो कभी अपने मूल-स्वभाव से आगे-पीछे नहीं हुए। संवेदनशीलता उनके स्वभाव का मुख्य अंग अन्तिम समय तक रही।

पण्डितजी चम्पारन जिले के दौरे पर थे। स्थानीय नेता और वे कार में बैठे चले जा रहे थे। कार भागी जा रही थी। एक चौराहे पर आकर ड्राइवर दुविधा में पड़ गया कि किधर जाना है। उसे रास्ता नहीं मालूम पड़ रहा था। पण्डितजी ने पास बैठे स्थानीय नेताजी से कहा—"किधर चलना है हम लोगों को ?"

नेता जी ने हड़बड़ाकर उत्तर दिया—"जी, मुझे तो खुद नहीं मालूम।"

इतना सुनना था और पण्डितजी के तेवर बदल गये। उन्होंने तुरन्त कार रुकवाई और बोले—"आप नीचे उतर जाइये। आप इस क्षेत्र के नेता हैं और आपको इस क्षेत्र का भूगोल तक नहीं मालूम।"

बेचारे वे स्थानीय नेता बहुत ही लज्जित हुए। प्रश्न उठता है कि देश के प्रधान मन्त्री को क्या एक स्थानीय नेता का इस प्रकार अपमान करना चाहिए। यदि यह प्रश्न उठता ही है तो उसकी बगल में दूसरा प्रश्न यह भी उठता है कि क्या स्थानीय नेता को, अपने क्षेत्र की जनता को धोखे में रखकर अपनी नेतागिरि की रक्षा करनी चाहिए ? ऐसा नेता जिसे उस क्षेत्र का भूगोल भी नहीं मालूम, जनता के मन के दुख और उनके जीवन की पीड़ा को कैसे मालूम करेगा ?

कि मुझे चारपाई मिल गई है और उस पर अपने हस्ताक्षर किं

पहरेदारों और सुरक्षा अधिकारियों ने उस जाट और उ खाट की कद्र नहीं की, लेकिन जिसके खातिर वे पहरा लगा थे उसने खाट को भी स्वीकारा और जाट को भी सिर आंखों प बैठाया। बड़े आदमियों की बातें ही बड़ी होती हैं। मगर पह उनकी बातें बड़ी होती है और आगे चलकर उनकी ये बड़ी बा ही उन्हें बड़ा आदमी बना देती हैं।

बड़े आदमी और उनके बड़प्पन की सबसे बड़ी पहचान य है कि वह इस अहसास से कोसों दूर होता है कि वह बड़ा है। जबलपुर के शहीद स्मारक का उद्घाटन करने पण्डितजी वह आये थे। बाद में वे स्वतन्त्रता सेनानियों को ताम्रपत्र दे रहे थे। सभी लोग अपनी-अपनी बारी से आते झुककर उन्हें प्रणाम करते। लेकिन एक शहीद को वृद्धा माता जब उनके सामने आई तो वह प्यार और दुलार में यह भूल ही गई कि ताम्रपत्र देश के प्रधान मन्त्री से ले रही है। उसका दुलार झलक उठा। उसने झुककर प्रणाम करने के बजाय उनकी कमर थप-थपाकर जैसे शाबासी और आशीर्वाद दे दिया। वृद्धा ने तो भूल की सो की लेकिन पण्डितजी भी भूल गये कि वे प्रधान मन्त्री हैं और देश के के बड़े नेता है। वृद्धा का हाथ कमर की तरफ बढ़ा तो उन्होंने भी अपनी पीठ झुका दी और उसके सामने झुककर आशीर्वाद लिया। देखने वालों को ऐसा लगा कि जैसे वह वहां केवल भाषण देने नहीं आये हैं, कुछ लेने भी आये हैं—एक माता का दुलार भरा आशीर्वाद।

पण्डितजी को यह बात पसन्द नहीं थी कि उनकी जनता और उनके बीच कोई अवरोध बनकर आड़े आये और वे जनता से मिलने वाले प्यार से महरूम रह जाये। वे एक बार विश्राम करके मनाली से लौट रहे थे। रास्ते में रैसन गांव में उनके दर्शन करने

एक मोड़ों से गुजरना पड़ा। बात कुछ पेचीदा भी हो गई लेकिन सारांश यह निकला कि वे जन-जन के दुख से दुखी होकर उनका दुख दूर करना चाहते हैं। इस चाह से उन्हें ताकत मिलती है और इस ताकत के भरोसे वे जन कल्याण के कार्य के लिए कूद पड़ते हैं। इस कूदने के साहस के कारण ही जनता में वे प्रिय हैं। उस विदेशी महिला का सवाल इतना मुश्किल और इतना आसान था कि एकाएक जवाब देना सम्भव भी नहीं था। लेकिन पण्डितजी ने फिर भी तुरन्त ही विश्लेषण करके सारी स्थिति स्पष्ट कर दी।

एक बार कुछ पण्डितों और ज्योतिषियों ने पण्डितजी पर बुरे ग्रहों की छाया का प्रभाव देखकर शान्ति अनुष्ठान के लिए विचार किया, लेकिन यह अनुष्ठान तो तभी हो सकता था जब पण्डितजी स्वयं अनुष्ठान का संकल्प लें। पर यह बात उनसे कहे कौन? फिर एक दिन गोस्वामी गणेश दत्त जी हौसला करके उनके पास जा पहुंचे और सारी स्थिति का ज्ञान कराया। पण्डित जी मुस्कराकर बोले—"भाई आपको तो मालूम ही है कि मैं इन सब बातों पर विश्वास नहीं करता।"

गिलास दूध लायी हू। सुरक्षा अधिकारियो ने उस महिला को पीछे हटाना चाहा, पर पण्डितजी ने उसके हाथ से गिलास ले लिया। सुरक्षा वालो ने उन्हे रोकना चाहा, पर वे गिलास मुह को लगाकर गटागट सारा दूध पी गये।

प्यार की मारी जनता कोसो दूर से प्यार का सागर बनकर लहराती हुई आती थी। उनकी सौगात मे तो विष भी अपना गुण छोड देने को मजबूर हो जाता। पण्डितजी ने दूध पी लिया तो सारे सुरक्षाधिकारी और उपस्थित स्थानीय नेता देखते ही रह गए।

विदेश से आई एक पत्रकार महिला ने उनसे एक बार पूछा--"आपके लोग आपको इतना प्यार करते है, आपकी इस लोकप्रियता का कारण आखिर क्या है?"

पण्डितजी इस सवाल का जवाब एकाएक दे नही सके। वे सोचने लगे फिर बोले—"ऐसा लगता है जैसे जनता मेरी किसी अन्दरूनी जरूरत को पूरा करती है। अपने अगर और ताकत का अहसास करने पर मुझे कुछ तसल्ली मिलती है। लेकिन जितना ही लोग मुझे प्यार करते हैं मेरे मन की वीणा उतनी ही जोर से बज उठती है। साथ ही मेरी जिम्मेदारिया भी बढ जाती हैं। बावजूद इसके कि मेरे भीतर का इन्सान बहुत ही ताकतवर है मुझे लगने लगता है कि इन्सान और इन्सान मे फर्क पैदा करनेवाली दीवारें वह निषली है। फिर मैं अनुभव करता हू कि अकेले अपने को ऊपर उठाने के बजाय अपने सभी दुखी और परेशान साथियो को भी उभारना एक बडा काम होगा।"

पण्डितजी कुछ रुके और फिर बोले—"जनता के दुख मे शामिल होने की जो ललक है, शायद उसे देखकर ही जनता भी मुझे प्यार करती है।"

वे लोकप्रिय कैसे और क्यो हैं इस बात को पढ़ने मे उन्हे कई

एक मोड़ों में गुजरना पड़ा। बात कुछ पेचीदा भी हो गई लेकिन सारांश यह निकला कि वे जन-जन के दुख से दुखी होकर उनका दुख दूर करना चाहते हैं। इस चाह से उन्हें ताकत मिलती है और इस-ताकत के भरोसे वे जन कल्याण के कार्य के लिए कूद पड़ते हैं। इस कूदने के साहस के कारण ही जनता में वे प्रिय हैं। उस विदेशी महिला का सवाल इतना मुश्किल और इतना आसान था कि एकाएक जवाब देना सम्भव भी नहीं था। लेकिन पण्डितजी ने फिर भी तुरन्त ही विश्लेषण करके सारी स्थिति स्पष्ट कर दी।

एक बार कुछ पण्डितों और ज्योतिषियों ने पण्डितजी पर बुरे ग्रहों की छाया का प्रभाव देखकर शान्ति अनुष्ठान के लिए विचार किया, लेकिन यह अनुष्ठान तो तभी हो सकता था जब पण्डितजी स्वयं अनुष्ठान का संकल्प लें। पर यह बात उनसे कहे कौन ? फिर एक दिन गोस्वामी गणेश दत्त जी हौसला करके उनके पास जा पहुंचे और सारी स्थिति का ज्ञान कराया। पण्डितजी मुस्कराकर बोले—"भाई आपको तो मालूम ही है कि मैं इन सब बातों पर विश्वास नहीं करता।"

इस पर गोस्वामी जी ने कहा—"प्रश्न आपके विश्वास का तो है ही नहीं, प्रश्न तो जनता के विश्वास का है। जनता आपकी सुरक्षा की दृष्टि से चाहती है कि आप अनुष्ठान के लिए संकल्प करें। जनता का कहना है कि आप देश के उद्धारक हैं। देश की रक्षा की जिम्मेदारी आप पर है। फिर आप तो अपनी जनता से प्यार करते हैं और अगर जनता चाहती है कि आप अनुष्ठान का संकल्प में लें तो आपको अपनी प्यारी जनता की बात मान लेनी चाहिये।"

पण्डितजी ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—"तो आप तर्कों से लैस

होकर आये हैं। जब जनता चाहती है तो ठीक है, जैसी आपकी मर्जी।'

मतलब यह कि जनता की मनुहार की खातिर यह व्यक्ति अपने विश्वास, अपने सिद्धान्त और अपनी मान्यताओं को भी त्यागने के लिए सदा तैयार ही रहा। जनता के प्यार और दुलार के सामने अपनी मान्यताओं की क्या मान्यता ?

जयपुर के पास एक गाव मे एक किसान रहता था। नाम था उसका भौरी लाल गोलीमार। उसने एक बार अपने एक एकड़ जमीन पर गेहू की 72 मन 22 सेर और 8 छटाक गेहू की खेती की। यह बहुत बड़ा रेकार्ड था। उस गाव के ही नही, आस पास के गाव के लोग भी उस गेहू को देखने आ जुटे। अजूबा ही ही था। एक एकड़ जमीन पर बड़े दाने का इतना गेहू पैदा होना। सभी ने उसके श्रम और मेहनत को सराहा। यह भी मन ही मन बहुत खुश होता रहा। जो भी उससे मिलता उसकी तारीफ करता, लेकिन उसका मन मचल उठा कि वह देश के प्रधान मंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू तक इस खबर को पहुचाकर उनसे शाबासी लू। उनकी शाबासी के बिना तो यह यश फीका ही है, लेकिन सवाल था कि वहा तक पहुचा कैसे जाये। वह कई दिनो तक इसी उधेड़बुन मे लगा रहा। सोचा करता कि इतने बड़े आदमी से वह मिलेगा कैसे और उसे मिलने देगा कौन? मगर साथ-साथ वह पण्डितजी की जिन्दादिली के किस्से भी सुना करता था। अखबारों और लोगो के मुह से उसने जाना था कि पण्डितजी सामने पड़ने वाले हर इन्सान के साथ बहुत ही प्यार और इज्जत से पेश आते है। सोचते-सोचते उसने एक दिन निश्चय कर लिया कि दिल्ली चला जाये। उसने लकड़ी का एक लम्बा-सा सन्दूक बनवाया और उसमे गेहू की बालें रखकर वह अपनी ... साथ लेकर दिल्ली आ पहुचा। दिल्ली शहर को ...

देखकर उसका मन फिर कच्चा-कच्चा होने लगा। लेकिन फिर पण्डितजी के अच्छे व्यवहार की बातों को याद करके उसने हिम्मत पकड़ी और सन्दूक लेकर उनके निवास स्थान पर जा पहुंचा। द्वारपाल और सुरक्षा-अधिकारियों को उसने सारा किस्सा कह सुनाया। भीतर खबर भेजी गई। पण्डितजी ने उसे बुला भेजा। जब दोनों पति-पत्नी उनके सामने पहुंचे तो अभिवादन किया—'काका नमस्कार।'

चाचा के पर्याय काका ने मुस्कराते हुए उनका अभिवादन स्वीकार किया। भोरीलाल ने उन्हें बताया कि उसने अपने एक एकड़ खेत में 72 मन 22 सेर और 8 छटाक गेहूं की खेती की है। साथ ही साथ में लाई हुई उस गेहूं की बाली भी दिखाई। पण्डितजी ने गेहूं का वह दाना देखा तो बोले—'गेहूं का ऐसा मोटा दाना तो मैंने पहले कभी नहीं देखा। यह गेहूं किन साधनों से पैदा किया है?'

उस बेचारे को क्या पता कि साधन क्या चीज होती है। उसे तो केवल इतना पता था कि उसने खेत पर मेहनत की है। उसने बताया कि बिना किसी मशीन की सहायता से ही उसने यह गेहूं पैदा किया है। यह सुनकर तो पण्डितजी और भी अधिक खुश हो गये और कहने लगे—"बिना मशीन के सिर्फ मेहनत के बूते तुमने जो पैदावार की है, बहुत अच्छी है। मैं चाहता हूं इस नमूने को विदेशी अतिथियों को दिखाओ।"

भोरी लाल को तो जैसे राम ही मिल गये। उसके यश को पण्डितजी की स्वीकृति मिल गई तो बस हो गया और क्या चाहिए। उसका मान हुआ। स्वागत हुआ फिर पण्डितजी ने उसकी तरफ ऐसे देखा मानों कह रहे हों कि अब तुम्हें क्या क्या चाहिए। उसे क्या चाहिए था, ऐसे तो बिना मांगे सब मिल
ने उसे एक प्रमाण पत्र दिया जो आज

उसकी सबसे बडी दौलत है, सबसे बडी जायदाद है। वह प्रमाण पत्र इस प्रकार है—

'श्री भौरी लाल जी गोलीमार मुझसे मिलने आये और उन्होंने मुझे नमूने के तौर अपने फार्म मे उपजा हुआ गेहू दिखाया जो कि जयपुर के निकट पैदा हुआ है। मैं इसको देखकर चकित रह गया। क्योकि यह इतना बडा दाना है कि आज से पहले मैंने इतना बड़ा दाना कही नही देखा। उन्होने यह भी बताया कि मैंने अपने फार्म मे इस किस्म के गेहू की उपज 72 मन प्रति एकड से भी अधिक की है। यह विचारणीय बात है कि कौन सी वस्तु इतनी उपज कर सकती है। मैं श्री भौरीलाल को इसके लिए धन्यवाद देता हू और अन्य कृषको को इस ओर ध्यान देने के लिए आग्रह करता हू।"

व्यक्ति एक रूप अनेक

मैंने दुनिया के इतिहास में एक प्रधानमन्त्री को इतना लोकप्रिय होते कभी नहीं देखा। वे बच्चों के लिए नेहरू चाचा हैं, युवतियों के लिए सुन्दर राजकुमार। वे विद्वानों के लिए महापण्डित, दार्शनिकों के बीच महान दार्शनिक, विज्ञानवेत्ताओं के लिए कुशल वैज्ञानिक व साहित्य और राजनीति में भी कुशल पण्डित हैं। —आचार्य कृपलानी

जीवन के आरम्भ से ही पण्डितजी विभिन्नता, विरूपता और अनेकरूपता के मध्य से गुजरते चले गये। बालपन में ही इंगलैंड विद्याध्ययन के लिए चले गये। वहां से आये तो कुछ समय तक वकालत की, फिर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद गये। जेल फिर लड़ाई फिर जेल। जुल्मों का सामना विदेशियों से टक्कर। देश को आजाद कराना, फिर प्रधानमन्त्री का कर्तव्य निभाना। देश की अनेक समस्याएं। उनसे निपटना। चीन का हमला। उनका

दुख। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ का बोझ। भिन्न-भिन्न देश के अतिथियो से मिलना, विचार विनिमय करना। अर्थात पूरे जीवन मे हर भाषा, हर देश और जाति के लोगो से मिले। अपनी ही धरती पर मीठे कडवे घूट पीये। अच्छे बुरे दिन भी देखे। उतार चढाव देखे। ऐसे मे उनके व्यक्तित्व मे जो निखार आता उसने फैलने के लिए चारो ओर की दिशाए पकड ली। विदेशी पत्रकार भी इस बात को मानते है कि पण्डितजी बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके भिन्न-भिन्न रूपो और तस्वीरो को देखने के बाद व्यक्ति विचार मे पड जाता है कि ये अलग-अलग तस्वीरे क्या एक ही आदमी की हैं। हैरानी होती है एक ही व्यक्ति की अलग-अलग एक दो तीन नही, ढेरो तस्वीरे देखकर।

विनम्र

1915 मे इलाहाबाद के मेयो हॉल मे अंग्रेजी शासन के विरोध में प्रदर्शन करने के लिए एक विराट सभा का आयोजन किया गया था। उस दिन जबरदस्त गर्मी पड रही थी। जवाहरलालजी उन दिनों बिलकुल युवक ही थे। अन्य स्वयसेवको के साथ वे लोगों को ठण्डा शरबत पिलाने का काम कर रहे थे। हालांकि ये विदेश से शिक्षा ग्रहण करके आये थे और सभी जानते थे कि

बहुत ही बड़े घर के लड़के हैं। बैरिस्टरी भी कर चुके थे। इतने पर भी अहंकार उनको छू तक नहीं गया था। एक साधारण से स्वयंसेवक की भांति सभी की सेवा में लगे हुए थे।

उस समय वहां सभी लोग तो उन्हें पहचानते नहीं थे। एक सज्जन बाहर गर्मी से आये। उन्होंने देखा कि स्वयं सेवक शरबत पिला रहे हैं तो सामने पड़े जवाहरलाल जी को उन्होंने बड़े ही रुवाब से कहा—"ऐ, एक गिलास शरबत पिलाओ।"

जवाहरलाल जी ने कहा—"अभी लाया साहब।"

और वे लपककर भीतर गये और शरबत का गिलास ले आये तथा उन सज्जन को दिया। तब तक सज्जन को किसी ने बता दिया था कि जिनको आपने शरबत लाने का हुक्म-सा दिया है, वे मोतीलाल जी के साहबजादे हैं।

वे सज्जन हैरान हो गये। और जब जवाहरलाल जी शरबत लेकर उनके सामने आ खड़े हुए तो वे बड़े ही प्यार और दुलार से बोले—"अरे बरखुरदार, सिर और आंख झुकाने की अपनी अदा से हमें पता तक नहीं लगने दिया कि तुम मोती लाल जी के साहबजादे हो। वाह भई वाह ! इस उम्र में जब मामूली घर के नौजवान भी सीना निकालकर दनदनाते हुए चलते हैं तुम सिर और आंख नीचे किये बहुत ही हलीमी से चल रहे हो। तुम्हारे ये दमखम और तुम्हारी यह हलीमी (नम्रता) बतलाती है कि एक दिन तुम बड़े आदमी बनोगे।"

उस दिन की बात तो आई-गई हो गई, लेकिन उन सज्जन की बात सच साबित हुई। नम्रता जैसे ज्योतिष की कोई खुली किताब हो।

होनहार

राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में 1922 में पिता-पुत्र दोनों ही

संवाददाता हिचक के मारे कुछ बोल न पाये।

वे खुद ही बोल पड़े—"हेराल्ड तो शायद खर्च बरदाश्त न कर सके, लेकिन तुम्हें टेलीफोन तो चाहिए ही। लो यह एक चैक लो और फोन लगवा लो। अगर और रुपयों की जरूरत हो तो इन्दिरा या विजयलक्ष्मी से ले लेना।"

एक राष्ट्रनायक संवाददाता के कष्टों के प्रति भी इतना सजग कि अपने संचालक होने के काम व नाम में कमी नहीं आने दी।

संवाददाता

बाराबंकी में पण्डितजी का भाषण आयोजित हुआ। उस समय 'नेशनल हेराल्ड' की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसलिए हर जिले में संवाददाता भेजना सम्भव नहीं था। उस दिन बाराबंकी में भी पत्र का कोई संवाददाता नहीं आ सका। अपना भाषण समाप्त कर पण्डित जी जब लखनऊ लौटे तो 'हेराल्ड' के कार्यालय में पहुंचे और खुद अपने भाषण की रिपोर्ट लिखी—"मिस्टर जवाहरलाल नेहरू द कांग्रेस लीडर एक्सप्लेण्ड टु पीपुल्स···।"

पत्रकारिता और समाचार पत्र के मामले में ऐसा होता नहीं कि भाषण देने वाला ही उसकी रिपोर्टिंग भी लिखे। यदि कोई नेता ऐसा करता है तो वह समाचार प्रकाशित होता ही नहीं। लेकिन पण्डितजी की रिपोर्टिंग सम्पादक की लाल नीली पेंसिल के नीचे से निकले बिना ही ज्यों की त्यों ही प्रकाशित हुई।

स्वावलम्बी

1941 में अलमोड़ा जेल से रिहा होकर पण्डितजी नैनीताल गये और वहीं अपने एक मित्र के यहाँ ठहरे। कुछ दिन वहाँ रहकर

जब प्रसिद्ध सेठ डालमिया जी को मालूम हुई तो उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने तुरन्त ही पांच हजार रुपये का चैक भेजा और साथ ही एक पत्र भी भेजा। पत्र में लिखा था कि वे इस धन को अपने व्यक्तिगत कार्य में लाएं। यदि आवश्यकता हो तो और भी धन भेजा जायेगा।

पण्डितजी के स्वभाव को समझते हुए उन्होंने साथ ही यह भी लिखा कि यदि वे इस धन को उपहारस्वरूप स्वीकार करना न चाहें तो ऋण अथवा कुछ भी समझकर स्वीकार अवश्य कर लें।

पण्डितजी ने उनकी इस कृपा के लिए उत्तर देते हुए पत्र लिखा—यह सच है कि हमारी आर्थिक स्थिति अभी वैसी नहीं है जैसी कि पिताजी के जीवन के काल में थी। फिर भी मैं अपना खर्च चलाने की स्थिति में हूं तथा अपने गुजारे के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है। मैं मजदूरी कर लेना पसन्द करूंगा, बजाय इसके कि अपने खर्च के लिए किसी परिचित अथवा मित्र से आर्थिक सहायता लूं। हां पांच हजार के चैक के विषय में यदि आप स्वीकार करें तो इस धन का प्रयोग किसानों की भलाई के लिए कर लूं, जिनका हित मेरे मन में सर्वोपरि है। यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकार न हो तो यह लौटा दिया जाये।"

स्थिति सचमुच में ठीक नहीं थी। इस पर डालमिया जी ने पांच हजार रुपये का चैक भेजा उनके खुद के खर्च के लिए और वे मजदूरी करना पसन्द करते हुए उस रकम को किसानों के हित में लगाना चाहते थे। जबकि आज कुछ सिरफिरे लोगों का कहना है कि पण्डितजी ने सारे देश में उद्योगों और कारखानों को ही प्रधानता दी, किसानों के प्रति कुछ विचार वे कभी नहीं

सेवक

कश्मीर की लड़ाई के दिनों में पण्डितजी चौकियों का दौरा कर रहे थे। एक चौकी पर उन्होंने कहा कि वे अगली चौकी के सिपाहियों से मिलना चाहते हैं। लेकिन वह चौकी बहुत दूर थी और उन्हें उसी दिन लौटना था। अतः तय हुआ कि टेलीफोन पर बात सिपाहियों से कर लें। पण्डितजी ने टेलीफोन करते हुए कहा—"हैलो।"

दूसरी ओर से कड़ाकेदार आवाज आई—"हैलो। तुम कौन हो।"

पण्डित जी ने बहुत ही सहज स्वर में कहा—"मैं हूं आपका सेवक जवाहरलाल।"

दूसरी ओर से उखड़ी हुई आवाज आयी—"उस चौकी पर कोई हमारा सेवक जवाहरलाल नहीं है।"

पण्डितजी ने बात का खुलासा किया—"मैं हूं आपका प्रधान

उधर से धमाका हुआ—"बेवकूफ! अभी सेवक था अभी प्रधान मन्त्री बन गया।"

पण्डितजी मुस्करा दिये और बोले—"आप लोग कैसे है ?"

रूखा-सा जवाब मिला—"बहुत अच्छे है।"

प्रतिनिधि

विदेशियों के सामने पण्डितजी ने हमेशा ही अपने देश और उसकी संस्कृति की सही तस्वीर पेश करने की कोशिश की थी। प्रमुख विदेशी जब भारत में आते थे तो वे उनसे ही मिलकर उनमें ही बात करके मान लेते थे कि उन्होंने पूरे भारत को देख और जान लिया।

एक बार अफ्रीका से छात्रों का एक दल उनसे मिलने आया दल भारत के अनेक स्थान पर घूमकर आ रहा था। स्वदेश लौटने से पहले प्रधानमन्त्री नेहरू से मिलना उनके लिए जरूरी था। जब पण्डितजी उनके बीच पहुंचे तो बोले—"आप लोग जिस देश में आये हैं वह बड़ा ही पुराना देश है। इसकी सभ्यता की कई पर्तें हैं और देश में घूमने पर आपको कहीं न कहीं हर पर्त देखने को मिल जायेगी। यहां कुछ चीजें आप ऐसी देखेंगे जो यूरोप और अमेरिका में भी हैं और कुछ बातें ऐसी मिलेंगी जिन्हें समझने में आपको काफी परेशानी होगी। मगर यहां की हर चीज अहमियत रखती है। क्योंकि हिन्दुस्तान जैसा भी है वह इन सभी चीजों के मेल से बना है। सभ्यता की जो पर्तें आपको खोखली मालूम हों, उसके बारे में यह समझिये कि किसी समय यह भी सारपूर्ण थी।

अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर

नेहरू वह केन्द्र बिन्दु है, जहां पूर्व और पश्चिम मिलते हैं।

—राष्ट्रपति नासिर

शिखर सम्मेलन की सारी मर्यादा समाप्त-सी हो गई। विश्व की बड़ी शक्तियां हुंकार रही थीं। पता नहीं कब टक्कर हो जाए। स्थिति अत्यन्त ही नाजुक और विस्फोटक। विश्व के लगभग सभी देशों के राष्ट्राध्यक्ष, राष्ट्रनायक पहुंचे। के मन में तनाव और खिंचाव था। सभी एक-दूसरे से कटे हुए और ऐसे वातावरण में शान्तिदूत नेहरू वहां पहुंचे तो सब शान्ति स्थापना का काम कर डाला। वहां पण्डितजी ने एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। इसमें सभी राष्ट्रों के प्रमुख उपस्थित थे। ऐसे-ऐसे लोग इस भोज में सम्मिलित थे जो एक दूसरे का मुंह तक देखने के लिए तैयार नहीं थे। पण्डितजी ने बड़ा मानसिक कदम उठाया था। जब भोज [illegible] थी। पण्डितजी ने अतिथियों के बैठने का [illegible] था कि दो एकदम विरोधी दशा के नेता आस-पास बैठें। [illegible]

तैया रहे थे। यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो हृगरी के कादार पास थे। पोलैंड के योमुल्का भी इन्हीं की बगल में। इराक के नी जावेद के साथ इजरायल के गोल्डा मायर और घाना के प्ट्रपति एन्क्रूमा बेल्जियम के स्पाक के साथ बैठे थे। सभी एक-दूरे के विरोधी थे, लेकिन सभी विश्व के शान्तिदूत पण्डित वाहर लाल नेहरू के अतिथि थे इसलिए आपस में खूब जमकर तें ही नहीं, बल्कि हंसी-मजाक कर रहे थे।

आसमान में यदि कोई भूत उड़ता-सीधा ... [illegible] मारने को तैयार हो जाता था और इस बात के ... [illegible] बात थी कि किसी भी ... के साथ ... [illegible] को ... अनुभव करता था।

जिस दिन ... [illegible] उस दिन ... [illegible]

[illegible]

टोकरी की ओर झपटा और वहां से एक पत्रिका उठा ली। और जैसे अपनी भूल पर पछताता हुआ बोला—"मैं इसके साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। इसमें एक ऐसी वस्तु है जिसका मैं आदर करता हूं जिसके लिए मेरे मन में अपार श्रद्धा है।"

वह एक अरब पत्रिका थी। उसके मुख पृष्ठ पर कर्नल नासिर के साथ दो अन्य अरब देशीय राष्ट्राध्यक्ष थे। उन्हें देखकर अली ने कहा—"देखते हो गोपाल ये हैं हमारे वे दोस्त जिन्होंने कहा था—हम एक हैं, मिस्र का बैरी हमारा बैरी है, मिस्र की धरती पर हमला हम अपनी धरती पर हमला मानेंगे, जो मिस्र का बाल बांका करने का दुसाहस करेगा, हम उस पर टूट पड़ेंगे। आज मिस्र पर बम बरस रहे हैं। काहिरा जल रहा है और ये सब मुह छिपाये पड़े हैं। बातें करने वाले लोग।"

कहते-कहते अली के चेहरे पर नफरत और निराशा की एक घटा-सी छा गई। कुछ रुक कर उसने फिर कहा—"लेकिन गोपाल हमारे पक्ष में एक आवाज उठी है। दुनिया वालों ने उस आवाज को सुना है। और हमारे दुश्मन भी उस आवाज को अनसुनी नहीं कर सकते।"

इतना कहकर अली ने पत्रिका का पिछला अन्तिम आवरण पृष्ठ फाड़ा और फिर से उस पत्रिका को कचरे की टोकरी में फेंक दिया।

वह आगे कहने लगा—"हम मिस्र के लोग उसके अहसानमन्द हैं। वह हमारा सच्चा दोस्त है। नासिर ने उससे प्रेरणा पाई है। वह उसे अपना बुजुर्ग, अपना नेता मानता है।"

फिर अली ने पत्रिका का वह अन्तिम पृष्ठ जो गुस्से से मसलने के कारण सलवटों से भर गया था, धीरे-धीरे उसकी सलवटें निकाली और उस पृष्ठ को सजोते हुए कहने लगा—"हम उसके उपकार कभी नहीं भूलेंगे।"

वह फिर चुप हो गया और गोपाल की तरफ देखकर बोला—"तुम जानते हो वह व्यक्ति कौन है। नहीं जानते ? तो देखो।"

अली ने आवरण पृष्ठ को उलटाया उसे सिर और आंखो से लगाया फिर गोपाल दास को दिखाया।

वह जवाहर लाल नेहरू का चित्र था जो 12 जून 1964 को डाक टिकट पर छपा था और आज भी 25 पैसे के डाक टिकट पर होता है। पत्रिका का वह चित्र दिखाते हुए अली आंखो में तरलता तैर गई।

ऐसे थे हमारे राष्ट्र नायक पण्डित जवाहर लाल नेहरू।

झलकियां

कठिनाई मुझे ताकत देती है, असम्भव मुझे जिन्दगी देता है, मगर सुस्ती, छोटापन, मेरे लिए जहर है।

—जवाहर लाल नेहरू

परवाह ही नहीं करती थी। बिहार के मुजफ्फरपुर में एक द
ऐसे ही एक भीड़ को काबू करते हुए उन्होंने एक व्यक्ति की गर्द
में धौल जमा दिया। धौल खाने वाले ने कहा—"पण्डितजी
की धौल तो मुझ पर पड़ी। अब मेरी दरिद्रता दूर हो जायेगी।

क्या मैं कोई खूंटी हूं

देश आजाद होने से पहले पण्डितजी एक बार लाहौर गये। वहां स्टेशन के बाहर ही उनका भव्य स्वागत हुआ। बाहर ही एक ऊंचा-सा मंच बनाया गया। शहर के जाने-माने लोग वहां आते और बारी-बारी से उनको हार पहना जाते। मोती लाल जी के पुराने मित्र रायजादा हंसराज भी वहां थे। वे भी आये तो पण्डितजी को प्यार से हार पहनाने लगे। इस पर पण्डितजी ने कहा—"क्या मैं कोई खूंटी हूं कि जो आता है मेरे हार इस पर लटका जाता है।"

रायजादा हंसराज जी ने कहा—"किसी और के लिए तुम कुछ भी हो सकते हो किन्तु मेरे लिए तो तुम मोतीलाल के बच्चे हो।"

निराश लौट पड़े। तभी एक फोटोग्राफर वहां पहुंचा। उसने सभी को निराश लौटने हुए देखा तो सोच में पड़ गया। फिर एकाएक ही उसे एक युक्ति सूझी। उसने एक गुलाब का फूल लिया और उनके कोट के बटनहोल में लगा दिया। पण्डितजी उसकी इस अदा पर मुस्करा दिये तो फोटोग्राफर ने तुरन्त ही उनका फोटो ले लिया। इस पर पण्डितजी बोले—"तुम बहुत चालाक हो।"

आप कितने जवान हैं

बात सन 1960 की है। एक समारोह में पण्डितजी ने राजगोपालाचारी को अपनी दोनों बाहों में पकड़कर गले से गाते हुए ऊपर उठा लिया। राजा जी हंसते हुए बोले—"अरे-अरे यह क्या कर रहे हो?"

पण्डितजी ने कहा—"मैं आजमाना चाहता हूं कि आप कितने जवान हैं।"

अच्छा तो मैं भी दर्शनीय हूं

बिहार के कुछ लोग दिल्ली घूमने आये। वहां आकर उन्होंने अनेक दर्शनीय स्थान देखे। फिर वे प्रधान मन्त्री के निवास स्थान पर पहुंचे। उनसे मिले। पण्डितजी ने पूछा—"दिल्ली में आप लोगों ने क्या-क्या देखा?"

एक ने बताया—"लाल किला, कुतुब मीनार, संसद भवन वगैरह।"

पण्डितजी ने पूछा—"यहां कैसे आना हुआ?"

उसी व्यक्ति ने कहा—"यूं ही आपके दर्शन करने।"

पण्डितजी ने कहा—"अच्छा तो मैं भी दर्शनीय वस्तु [illegible]। [illegible] र्शन जी भर कर।"

कैसा दीवाना हूं मैं

तेज गर्मी पड़ रही थी। कांग्रेस कार्यकारिणी की मीटिंग चल रही थी। पंखे चल रहे थे फिर भी सभी बेचैन से हो रहे थे। पण्डितजी ने गर्मी से परेशान होकर अपनी टोपी उतारकर फाइल पर रख दी। काम चलता रहा। इसी बीच फाइल पर इधर-उधर के कागज आकर रखे गये। भोजन का समय हुआ तो सभी उठ खड़े हुए। पण्डितजी भी उठने लगे तो अपने सिर पर हाथ फेरकर बोले—"अरे मेरी टोपी कहां गई?"

इधर देखा उधर देखा। सभी उनकी टोपी खोजने में लग गये, लेकिन टोपी मिल नहीं रही थी। वे गुस्से झल्ला उठे। सभी परेशान हो गये कि पण्डितजी की टोपी कहां गई। तभी वहां चपरासी आया और फाइलें उठाने लगा। फाइलें और कागज सम्भालते हुए उसे लगा कि कुछ चीज फाइलों के बीच आ रही है। उसने निकाल कर देखा तो टोपी थी। उसने टोपी पण्डितजी को दे दी। टोपी लेकर उसे सिर पर लगाते हुए वे बोले—"कैसा दीवाना हूं मैं।"

चाय या कॉफी

उन दिनों पंजाबी सूबे की मांग जोरों पर थी। मास्टर तारा सिंह इसी सिलसिले में पण्डितजी से मिलने वाले थे। एक पत्रकार ने उन्हें घेर लिया और पूछने लगा—"मास्टर जी आपसे मिलने आ रहे हैं। आप उन्हें क्या देंगे?"

प्रश्न टेढ़ा सा था। उत्तर भी कम टेढ़ा नहीं होता लेकिन पण्डितजी को तो बात टालनी ही थी वे बोले—"जो कुछ भी वे पसन्द करेंगे उन्हें दूंगा—चाय या कॉफी।"

ारी बकवास

अपनी लन्दन यात्रा के दौरान पण्डितजी अंग्रेजी के प्रसिद्ध ाहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शॉ से मिले। जब वे भारत वापस लौटे ो एक पत्रकार ने उनसे पूछा—"आपको उनकी कौन सी बात हुत पसन्द आई। तो पण्डितजी बोले—"उनकी बकवास।"

पत्रकार चकराया तो उन्होंने खुलासा किया—"आप लोग ो उन्हें सनकी समझते हैं न ? पर मैं उनकी इसी सनक का कायल ; और उनकी सनक आप लोगों के लिए बकवास है। इसलिए ापकी भाषा में बकवास ही कहूंगा।"

पत्रकार ने बात टालने के लिए दूसरा प्रश्न पूछा—"उनको ापकी कौन-सी बात पसन्द आई ?"

पण्डितजी बोले—"मेरी बकवास।"

अदल-बदल

इन्दौर में आयोजित ग्रामोद्योग प्रदर्शनी देखने पण्डितजी पहुंचे। वहां उन्हें ताड़ वृक्ष की एक बहुत ही खूबसूरत बेंत दिखाई दी जिसे वे बहुत देर तक देखते रहे। फिर कुछ सोचकर अपने हाथ का डण्डा वहां रखकर वह बेंत उठा ली और आगे बढ़ गये। देखने वाले हैरानी से देखते रहे मगर कुछ समझ न सके। पण्डितजी ने लोगों की हैरान नजरों को देखा तो कहने लगे—"अदल-बदल करना कोई बुरी बात नहीं है।"

फिर खुद ही इतनी जोर से हंसे कि सभी हंसते हंसते लोटपोट हो गये।

बधाई नहीं देंगे ?"

पण्डितजी कुछ बोले इससे पहले ही सेठ जी ने कहा—"मुझे तो डॉक्टरेट मिल चुकी है, इस पद्म भूषण से क्या होता है।"

इस पर पण्डितजी ने चुटकी ली—"आपको फर्क मालूम नहीं है? डॉक्टरेट लियाकत है और पद्म भूषण इज्जत है। दोनों का बोझ ठीक से ढोइए।"

मुर्गा मरा हुआ है

ऑल इण्डिया न्यूज पेपर्स एडिटर कान्फ्रेंस ने लंच पार्टी का आयोजन किया था। पण्डितजी भी आमन्त्रित थे। एक भारी-भरकम सेठ जी मुर्गे की टेबल के पास खड़े अपनी प्लेट में मुर्गे के अच्छे-अच्छे टुकड़े डाल रहे थे और खा रहे थे। खाते-खाते वे वहां से हट नहीं रहे थे। दूसरों को अपनी प्लेट में टुकड़े रखने में कष्ट हो रहा था। दूसरे सोच रहे थे कि सेठ जी हटें तो वे अपनी प्लेट में टुकड़े डालें, लेकिन वे हटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। पण्डितजी देर से उनका नाटक देख रहे थे। उनसे न रहा गया तो सेठ जी के पास आये और बोले—"सेठ जी, यह मुर्गा जिन्दा नहीं मरा हुआ है। इसलिए बेचारा इस जगह से उड़कर कहीं नहीं जा सकेगा। यहीं रहेगा। फिर और ले लीजियेगा।"

सेठ जी झेंपकर एक तरफ हट गये और लोग हंस पड़े।

पण्डितजी की सूझ और सरोकार में जो थोड़ा बहुत अन्तर था भी तो वह समय और परिस्थिति की देन से उत्पन्न था। गांधी जी अन्तर्मुखी राष्ट्रवादी थे जब कि पण्डित नेहरू का चिन्तन बहिर्मुखी राष्ट्रीयता का था।

स्वतन्त्रता से पूर्व ही पण्डित नेहरू ने अनेक देशों का भ्रमण किया था। वहां की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक गतिविधियों का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन और विश्लेषण किया था। उनकी मान्यता थी कि व्यापारी-वर्ग व्यापार के कारण सदा सम्पन्न रहता है, अतः भारत में औद्योगिक क्रान्ति होनी चाहिए, कल-कारखाने लगाकर उत्पादन बढ़ाना चाहिए, ताकि निर्यात द्वारा देश को निर्धनता से मुक्त किया जा सके। देश व्यापार और निर्यात द्वारा अधिक धन अर्जित करेगा तभी वह अपने आर्थिक ढांचे को सुदृढ़ बना सकेगा तथा हर व्यक्ति को जीवन के आवश्यक साधन व सुविधाएं जुटा सकेगा।

समाजवाद का दर्शन

विदेशों में जाकर पण्डित नेहरू ने इस सत्य को ग्रहण किया। विशेषकर, वे जब 1926-27 में रूस और मास्को गये तो उनके चिन्तन और दर्शन को एक नवीन दिशा प्राप्त हुई। कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'दा कैपिटल' से प्रभावित होकर लेनिन तथा रूस के परवर्ती नेताओं ने आर्थिक क्रान्ति व समाजवाद का क्षेत्र में नये आयाम कायम किये, जिससे पण्डित नेहरू अत्यधिक प्रभावित हुए। सर्वहारा वर्ग में एक नवीन जागृति और चेतना देखकर पण्डितजी ने भी भारत की धरती पर भारतवासियों के हित में उस आर्थिक-रचना को अपनाने का निश्चय किया। अब से लगभग 50 वर्ष पूर्व पण्डित नेहरू समाजवाद और आर्थिक-[illegible] जिस दृष्टि से प्रभावित होकर रूस से लौटे थे,

स्वतन्त्रता के पश्चात उन्होंने उसी रूप-रेखा पर भारत के विकास का चित्र बनाया और तभी से रूस के प्रति भारत का तथा भारत के प्रति रूस का एक रागात्मक सम्बन्ध बनता चला गया। मित्रता तो इससे पूर्व भी थी लेकिन हम कह सकते हैं कि रूस और भारत के भाईचारे का सम्बन्ध पचास वर्ष पुराना है।

आराम हराम है

समाजवाद के प्रति नेहरू जी जीवन अन्तिम समय तक निष्ठावान रहे। अपने देश में समाजवाद की स्थापना का ध्येय उन्होंने शिक्षा-काल में ही तय किया था, लेकिन मृत्यु से पूर्व तक अपने सपने को अपूर्णता का खेद भी था। बौद्ध धर्म के उनकी शान्ति-प्रिय मानसिकता में उपयुक्त स्थान रहा है और पंचशील और सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों पर हुए आघात ने उन्हें भी आघात पहुँचाया। सम्पूर्ण जीवन विश्व शान्ति के लिए समर्पित करने वाला व्यक्ति यदि स्वयं युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त हो जाए तो उसके आहत हृदय पर क्या बीतेगी, यह स्वयं ही कल्पना की जा सकती है। जवाहर नेहरू जी न चाहते हुए भी दोहरी मानसिकता के शिकार हो गये थे। युद्ध [illegible] है और शान्ति बनाये रखनी है, लेकिन [illegible] [illegible]

मन की अपनी सीमाएं और स्थिति है उसे प्रशासनिक और उत्तर-दायित्वों से जोड़ने में नेहरू जी का विश्वास नहीं था।

संगम के तट पर

समाजवाद, काव्य-प्रेम और 'आराम हराम है', के नारे की त्रिवेणी पर पण्डितजी को एक समय ऐसी अनुभूति हुई कि वे अतीत, वर्तमान और भविष्य के मध्य झूल गये। देहावसान से चन्द दिनों पूर्व रात को देर तक कार्य करने के पश्चात अलसायी स्थिति में उन्होंने अमेरिकन कवि रावर्ट फार्स्ट की कविता "स्टापिंग बाई वुड्स ऑन ए स्नोई इवनिंग" की अन्तिम चार पंक्तियां अपने पैड पर लिख डालीं। उनके द्वारा इन पंक्तियों का लिखना जहां एक ओर ऐतिहासिक महत्व रखता है वहीं इस सत्य को भी उजागर करता है कि वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति निष्ठावान थे तथा सदा उस पर चिन्तन मनन करते रहे।

रावर्ट फार्स्ट की कविता जो सोलह पंक्तियों में आबद्ध है, उसकी अन्तिम चार पंक्तियां ही पण्डितजी को अधिक सार्थक, अनुकूल और अपने व्यक्तित्व के समीप लगीं और उन्होंने वे लिख डालीं। वे पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

The woods are lovely dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go befor I sleep
And miles to go befor I sleep

उनकी मृत्यु के पश्चात अनेक कवियों ने इन पंक्तियों का अपने ढंग और शैली में अनुवाद किया है, लेकिन भावों और अर्थ

को अधिक स्पष्ट करने वाला जो सर्वमान्य अनुवाद है
प्रकार है:—

वन तो सघन और गहरा सुहाना।
मगर कुछ वचन है हमें भी निभाना,
न आराम मंजिल से पहले करेंगे
बहुत दूर जाना बहुत दूर जाना।

संसार की अनेक भाषाओं में अनेक कवियों ने अनेक रची है, लेकिन अपने महाप्रयाण से पूर्व पण्डित नेहरू फ्रास्ट द्वारा रचित कविता की अन्तिम चार पंक्तियां ही और प्रिय लगीं—आखिर क्यों ? इसका रहस्य क्या है इसलिए कि इन पंक्तियों में एक कर्मशील, दृढ़ व निश्चयी की भावना मुखर हुई है, जो विश्राम के सभी उपकरण उ होने पर भी उनकी अवहेलना कर आगे बढ़ने में विश्वास र है ? क्या ये वे ही पंक्तियां नहीं हैं जो पण्डित नेहरू के 'आराम हराम है' के समानान्तर चलती हैं ?

यद्यपि घने और सुहावने लगने वाले उपवन हैं, जहां विश्राम किया जा सकता है, लेकिन दुविधा यह है कि विश्राम के लि रुक गया तो वायदे जो किये गये हैं, किस प्रकार पूर्ण होंगे। वायदों की पूर्ति और विश्राम इन दोनों में से एक का चु ना है। वायदा श्रेय के लिए है और विश्राम प्रेय के लि श्रेय और प्रेय में से एक ऐसी वस्तु का चुनाव करना है र है, अमर है, मोक्ष-कल्याणकारी है और वह वस्तु है स्पष्ट ही हमें यह है कि विश्राम की ओर से विमुख हो वादा किया है उसे पूर्ण किया जाए।

न फिर उठ खड़ा होता है कि पण्डित नेहरू ने किसके वायदे ? क्या वायदे किये थे ? किसके लिए वायदे किये थे ?—

प्रश्नों का उत्तर है—भारतीय स्वतन्त्रता का वह आन्दोलन जिसकी बेल को पण्डित नेहरू ने अपने रक्त से सींचा तथा स्वतन्त्रता के पश्चात जिस बेल के फलों की रक्षा अपने परिश्रम, दूरदर्शिता तथा कर्मशीलता से की।

इतिहास स्पष्ट बोलता है कि एक सम्पन्न और अमीर घर का युवक स्वतन्त्रता आन्दोलन में इसलिए कूद पड़ा कि उसने अपनी अन्तरात्मा से और जनता-जनार्दन से कुछ वायदे किये, कुछ वचन दिये। वे क्या वायदे थे? यही कि हर चेहरा मुस्कराये, हर आँख खुशी से लबरेज हो, हर पेट को रोटी मुहैया हो, सभी के तन पर कपड़ा हो, हर जिन्दगी खुशहाल हो, समाज में सभी सुखी हों। यह था अनेक वायदों का एक वायदा—समाजवाद की स्थापना का वायदा! और जब तक यह वायदा पूरा नहीं होता तब तक विश्राम के साधन सम्मुख होने पर भी तथा विश्राम की आवश्यकता होने पर भी विश्राम और आराम नहीं किया जा सकता। ऐसे में विश्राम करने की बात सोच ली गई और फिर भला वायदे पूरे कैसे होंगे? वायदे पूरे नहीं हुए तो जनता कैसे सुखी होगी? विश्व में शान्ति का बिगुल कैसे बजेगा? अतः विश्राम नहीं करना है, कर्म करना है।

काफी रात गये पण्डितजी अपने कार्यालय में बैठे कार्य किया करते थे। कार्य करते-करते थकान का होना भी तो स्वाभाविक ही है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की चिन्ता, देश की समस्याओं का बोझ, आन्तरिक झगड़े, राष्ट्रीय सुरक्षा की चिन्ता आदि सभी बातों से मस्तिष्क बोझिल होने पर आराम की ओर तो प्रवृत्त होना ही होगा। ऐसे में अगड़ाई तोड़ते हुए उबासी लेते हुए उठ खड़े होकर आराम के लिए जाते-जाते एकाएक सामने पड़ी पुस्तक को आलस व जिज्ञासा भाव से देख लिया, पन्ने उलटने लगे तो सामने राबर्ट फ्रास्ट की कविता 'Stopping by wood---

मैंने समाजवाद की स्थापना तथा जन-कल्याण का वाय
रखा है और अभी तो बहुत काम बाकी है, समय कम है
प्रयाण से पहले तो मुझे बहुत से काम करने है। समाजवाद
शान्ती, शान्ति, मानवतावाद, भाई चारा, आर्थिक मुदृढ़त
की मीलों लम्बी सड़क है, सो मया तो यह मार्ग कैसे पूरा
मृत्यु रूपी निन्द्रा से पूर्व मुझे यह मीलों लम्बा 'शेष का
मार्ग पूरा करना है—And miks to go before I sleep.

पण्डितजी ने पक्तिया लिख ली और विश्राम करने ज
विचार त्याग, फिर से काम करने में जुट गये—यही स
जितना अधिक काम और कम आराम हो सके, अच
क्योंकि—I have promises to keep वाली बात चेतना
इससे भी पूर्व 'आराम हराम है' का नारा चेतना में थ
समानान्तर रेखाएं आमने-सामने बढ़ती ही चली गई। न
है न मिल पाने की सभावना, बस बढ़ते ही जाना है
सजगता है, जागरूकता है, इस सत्य को कि —'I have pr
to keep And miles to go before I sleep

कविता की उपरोक्त पक्तियो का पण्डित नेहरू द्वारा
उनकी चेतना, उत्तरदायित्व की भावना, कर्तव्यनिष्ठा,
बद्धता और कर्मशीलता का एक ऐसा प्रतिबिम्ब जिसमे
विशाल, जन-कल्याणकारी और जनता के प्रति कर्तव्य-
पूर्ण व्यक्तित्व को उजागर करता है। जीवन के अन्तिम
तक वे इस चेतना से जुड़े रहे कि उन्हें समाजवाद की स
का मौन निश्चय, मौन वचन पूर्ण करना है। उनकी
गतिशीलता का मूलाधार भी यही भाव था—करते ही
है।

10535

Snowey Evening' पढ़ने में आ गई तो इसकी क्या प्रति
वही स्थिति होगी जो चुम्बक के सम्मुख जाने पर लो
होती है।

रॉबर्ट फ्रॉस्ट की कविता पढ़ी जा रही है—Stop
woods on a snowey evening बारह पंक्तियाँ पढ़ चुकने
अन्तिम चार पंक्तियों को पढ़कर पण्डितजी प्रभावित हुए
प्रभावित नहीं हुए, बल्कि ऐसा लगा कि कवि उनसे ही
रहा है। उनके ही मन की बात कवि ने समझ ली है। य